महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(द्वितीय एवं तृतीय खण्ड)

पृष्ठ संख्या 201-300 तक

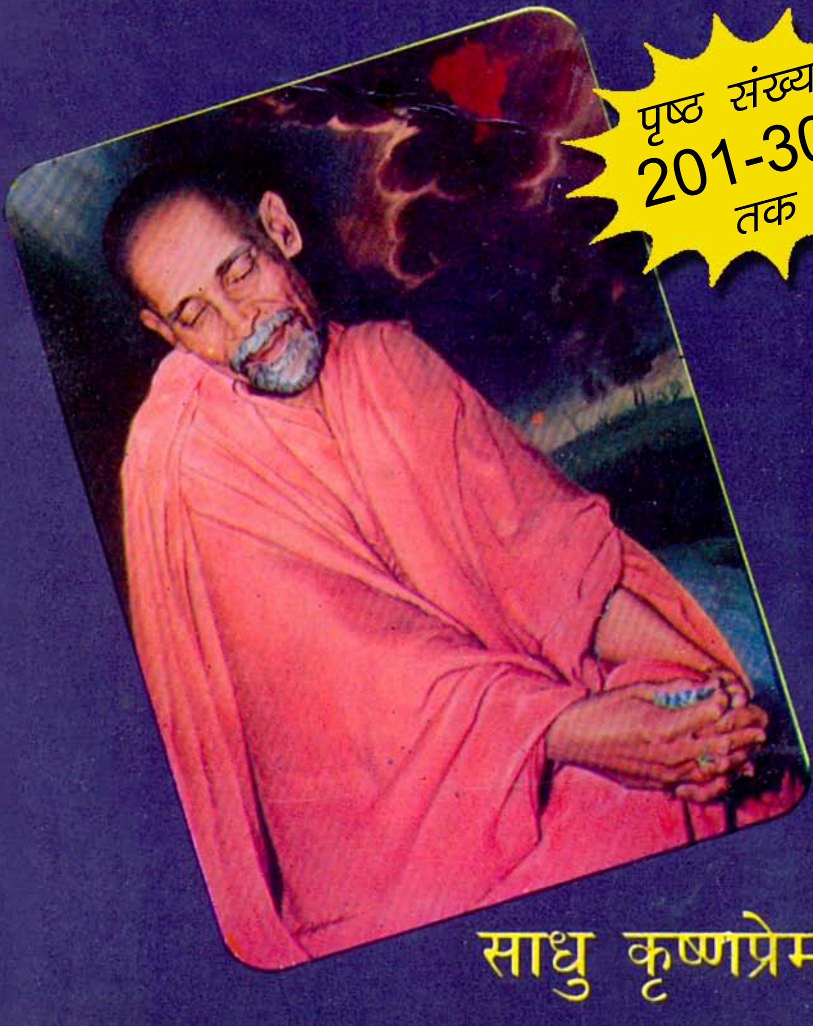

साधु कृष्णप्रेम

यस्मात् विभो परस्मात् न अन्यत् किंचन विद्यते तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये श्रीदक्षिणामूर्त्तये इदं नमः ।।

हिन्दी शब्दार्थ

जिनकी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र एवं पुरुष–ये आठ मूर्त्तियाँ ही चर एवं अचर समस्त विश्वको प्रकाशित कर रही हैं । विचार विमर्श करने वाले लोगोंके लिये जिन सर्वव्यापी परमात्माके न रहने पर अन्य कुछ भी नहीं रहता उन श्रीगुरुमूर्त्तिस्वरूप भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिको यह मेरा नमस्कार है ।

{१०}

सर्वात्मत्व स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुस्मिन्स्तवे ।
तेनास्य श्रवणात्तदर्थमननाध्यानाच्च संकीर्त्तनात् ।।
सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः ।
सिद्धयेतत् पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम् ।।

पदच्छेद

सर्वात्मत्व स्फुटीकृतम्, इदम्, यस्मात्, अमुस्मिन्, स्तवे, तेन, अस्य, श्रवणात्, तत्, अर्थमननात्, ध्यानात्, च, संकीर्त्तनात्, सर्वात्मत्व महाविभूति सहितम्, स्यात्, ईश्वरत्वम्, स्वतः सिद्धयेतत्, पुनः, अष्टधा, परिणतम्, च, ऐश्वर्यम्, अव्याहतम् ।

अन्वय

यस्मात् अमुष्मिन् स्तवे इदम् सर्वात्मत्वं स्फुटीकृतं तेन श्रवणात् तदर्थमननात् च ध्यानात् संकीर्त्तनात् महाविभूतसहितं ईश्वरत्वं, सर्वात्मत्वं स्वतः स्यात् पुनः अष्टधा सिद्धयेतत्, च अव्याहतम् ऐश्वर्यम् परिणतम् ।।

हिन्दी शब्दार्थ

क्योंकि इस भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्तिके स्तवनमें इस जगतके साथ सम्पूर्ण आत्मतत्त्वको स्पष्ट कर दिया गया है इसलिये इसके श्रवणसे, अर्थके मननसे एवं ध्यानसे, साथ ही सम्यक् प्रकारसे बार बार उच्चारण करनेसे महाविभूतियोंके साथ–साथ ईश्वरत्व तथा सर्वात्मभाव अपने आप प्राप्त हो जाता है । पुनः इस सबके साथ–साथ फिर आठों सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं एवं अव्याहत {अविनाशी} ऐश्वर्य की भी प्राप्ति होती है ।

{११}

वटविटपसमीपे भूमिभागे निषण्णं
सकलमुनिजनानां ज्ञान दातारमारात् ।

त्रिभुवनगुरुमीशं दक्षिणामूर्त्तिदेवं
जनममरणदुःखच्छेददक्षं नमामि ।।

पदच्छेद

वट, विटप, समीपे, भूमिभागे, निषण्णम्, सकल, मुनिजनानाम्, ज्ञानदातारम्, आरात्, त्रिभुवनगुरुम, ईशम्, दक्षिणामूर्त्तिदेवं, जनममरण, दुःखच्छेद, दक्षम्, नमामि ।।

अन्वय

वट–विटप–समीपे भूमिभागे निषण्णम् सकल मुनिजनानाम् आरात्, ज्ञानदातारम्, त्रिभुवन गुरुम् ईशम् दक्षिणामूर्त्तिदेवम् जनममरणदुःखच्छेदम् दक्षम् नमामि ।।

हिन्दी शब्दार्थ

वट वृक्षके समीप खुली भूमि–खण्डके ऊपर बैठे हुए सम्पूर्ण मुनिजनोंको आद्योपान्त ज्ञान देते हैं, ऐसे सम्पूर्ण त्रिलोकीके गुरु रूप भगवान् श्रीदक्षिणामूर्त्ति देवको जो जन्म–मृत्यु एवं दुःखोंको उन्मूल करदेनेमें चतुर हैं, मैं नमस्कार करता हूँ ।

{१२}

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा ।
गुरोऽस्तु मौनव्याख्यानम् शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः ।।

हिन्दी शब्दार्थ

आश्चर्य है कि वटवृक्षके नीचे सभी शिष्य अति वृद्ध हैं और गुरु युवक हैं । गुरु मौन रहकर व्याख्यान कर रहे हैं और शिष्योंके सभी सन्देह स्वतः छिन्न हो रहे हैं ।

ॐ नमः प्रणवार्थाय शुद्धज्ञानैकमूर्त्तये
निर्मलाय प्रशान्ताय दक्षिणामूर्त्तये नमः ।।
निधये सर्वविद्यानां भिषजे भवरोगिणां
गुरवे सर्वलोकानां दक्षिणामूर्त्तये नमः ।।

जो प्रणवकी व्याख्या हैं एवं विशुद्ध ज्ञानमूर्त्ति हैं, परम निर्मल हैं, प्रशान्त गंभीर हैं, उन दक्षिणामूर्त्ति भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ । जो सर्व विद्याओंके निधान हैं, सम्पूर्ण भवरोगकी औषधि हैं, सर्व लोकोंके गुरु हैं, उन दक्षिणामूर्त्ति भगवान्‌को मेरा नमस्कार है ।

भगवती परा अम्बिकादेवी

श्रीराधाबाबा द्वारा पूजित श्रीयंत्रराज

अध्याय दूसरा

{भगवती महात्रिपुरसुन्दरीका संक्षिप्त परिचय}

स्वात्मशक्ति श्रीविद्या ही ललिताकामेश्वरी भगवती महात्रिपुरसुन्दरी हैं। ये महाकामेश्वरके अंकमें नित्य विराजमान रहती हैं । उपाधिरहित विशुद्ध ह्लादात्मा ही महाकामेश्वर हैं और सदानन्दरूपा ह्लादिनी–उपाधिपूर्ण स्वात्मा ही परदेवता महात्रिपुरसुन्दरी ललिता हैं । सत्व, चित्व, एवं आनन्दत्वरूप धर्मत्रयविनिर्मुक्त विशुद्ध धर्मी मात्र अपना आत्मा ही महाकामेश्वर हैं जो भगवती महात्रिपुरसुन्दरी, कामेश्वरी, राजराजेश्वरीके आधारभूत हैं ।

{श्रीराधाकृष्ण एवं भगवान् श्रीकामेश्वर–कामेश्वरीकी एकता}

श्रीराधाकृष्ण जहाँ कंचनद्युति एवं नीलमेघवर्ण हैं, वहाँ श्रीकामेश्वर–कामेश्वरीके रक्तवर्णका ध्यान किया जाता है । श्रीपोद्दार महाराज एवं पूज्य गुरुदेव दोनोंकी ही मान्यता थी कि महाकामेश्वर–कामेश्वरी भगवान् राधाकृष्णके ही ऐश्वर स्वरूप हैं । असीम प्रेमका प्रकाश जहाँ भगवती श्रीराधामें है, वहीं असीम सामर्थ्यका प्रकाश पूर्ण ऐश्वर्यावतार भगवती कामेश्वरीमें हैं । वैसे तो भगवती त्रिपुराके तत्वकी गूढ़ अभिसंधिको उनके सिवाय दूसरा कोई जाने यह सर्वथा असंभव है ।

इस विषयमें यह कथा मुझे पू0 गुरुदेवने सन् १९५२ ई0 में सुनायी थी । मेरे साथ श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव भी थे, जो "कल्याण–कल्पतरु" में सह–सम्पादक रहे ।

पू0 गुरुदेव कह रहे थे कि भगवान् शिवजी {जो भगवान् महाकामेश्वरके ही स्वरूप हैं} परम लीलामय हैं । वे एक बार भगवती पार्वतीके साथ कैलाश पर्वत पर विराजित थे । ये भगवती पार्वती पराशक्ति भगवती ललिताका ही स्वरूप हैं । तो शिवजी महाराजने उनसे कहा – "देवि ! यदि तुम मुझ पर पूर्ण प्रसन्न हो तो तुम पृथ्वीतल पर कहीं पुरुषरूपमें अवतार लो और मैं स्त्रीरूप धारण करूँगा । यहाँ कैलाशमें जहाँ मैं तुम्हारा प्रियतम और तुम मेरी प्राणप्यारी भार्या हो, उसी प्रकार वहाँ तुम मेरे स्वामी तथा मैं

तुम्हारी भार्या बनूँगा । बस, यह लीला करना ही मुझे अभीष्ट है । तुम मेरी सर्वेच्छापूर्तिकर्त्री हो, इस इच्छाको भी पूर्ण करदो ।"

भगवान् शिवजी {कामेश्वर भगवान्} की इच्छा पूर्ण करनेकी स्वीकृति भगवती पार्वती {भगवती कामेश्वरी} ने तथास्तु कहकर दे दी । वे बोलीं –"मेरी नवीन मेघके वर्ण वाली जो भद्रकाली मूर्त्ति है, वह श्रीकृष्ण रूपमें पृथ्वी पर अवतार लेगी अब आपभी अपने स्वरूपसे स्त्रीरूप धारण करिये ।"

भगवान् शंकर बहुत ही संतुष्ट हुए । उन्होंने अपनेको नौ रूपोंमें प्रकट किया । आठ रूपोंसे तो उन्होंने ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, इन्दुलेखा, रंगदेवी, तुंगविद्या एवं सुदेवी सखीरूप धारण किये एवं वे स्वयं श्रीराधाके रूपमें अवतरित होगये । वे अपने शिखण्डी स्वरूपसे ललिता, श्रीकण्ठ रूपसे विशाखा, त्रिमूर्त्ति रूपसे चित्रा, एकनेत्र रूपसे चम्पकलता, एकरुद्र रूपसे इन्दुलेखा, शिवोत्तम रूपसे रंगदेवी, सूक्ष्म रूपसे तुंगविद्या एवं अनन्त रूपसे सुदेवी जी हुए । यही अष्ट मूर्त्तियाँ द्वारका लीलामें रुक्मिणी, सत्यमामादि भगवान्की आठ मुख्य पटरानियाँ रहीं । इनके अतिरिक्त भगवान् शंकरके भैरवगण भी स्त्रियोंके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह सहस्र रानियाँ हुए । अब भगवती बोली –"प्रभो ! आपकी इच्छाकी सदैव जय हो, मेरी जया एवं विजया नामकी जो दोनों सखियाँ हैं, वे पुरुषरूपमें श्रीदाम एवं सुदाम गोप होंगीं । श्रीविष्णु भगवान् के साथ मेरा पहलेही निश्चय हो चुका है कि वे ही बलराम {हलायुध} के रूपमें मेरे बड़े भाई होंगे। वे सदा ही मेरा प्रिय कार्य करने वाले हैं अतः वहाँ भी मेरे संगही होंगे । उनका नाम महाबली राम होगा । इस प्रकार आपकी महती कीर्त्तिका पूर्ण विस्तार करती हुई, आपकी इच्छा पूर्ण कर मैं पुनः अपने स्वधाम लौट आऊँगी ।

इसी निश्चयके अनुसार भगवती धरा और भगवान् ब्रह्माजीकी प्रार्थनाको निमित्त बनाकर भगवान् कामेश्वर–कामेश्वरी ही राधाकृष्ण एवं इनकी सहस्रों सखियोंके रूपमें लीलायमान हुए ।

इसका वर्णन गौडीय वैष्णवाचार्योंने भी अपने महाभागवत ग्रन्थमें किया है ।

{भगवान् कामेश्वर–कामेश्वरी ही सम्पूर्ण अवतारोंके परम कारण अवतारी परात्पर परब्रह्म परमात्मा हैं}

आगम शास्त्रोंमें ऐसा वर्णन भी आता है कि पराशक्ति भगवती ललितासुन्दरीके कर नखकी एक–एक कलासे एक–एक अवतारकी उत्पत्ति

हुई है।

"करांगुलि नखोत्पन्न नारायण दशाकृतिः" {ललिता सहस्त्रनाम}

उनके दक्षिण करांगुष्ठके नखसे कल्पका प्रथम अवतार मत्स्यावतार हुआ। इस मत्स्यावतारमें भगवान्ने शंखासुरका वध करके वेदोंकी रक्षाकी थी। भगवती ललिता {कामेश्वरी} की दक्षिण हस्तकी तर्जनीके नखसे दूसरा कूर्मावतार हुआ। इसी अवतारमें भगवान्ने अपनी पीठ पर मन्दराचलको धारण किया। इनकी ही कृपासे अमृत–मंथन संभव हो सका। भगवती कामेश्वरी ललिता त्रिपुरसुन्दरी पराम्बाके दक्षिण हस्तकी मध्यमा अँगुलीके नखसे तीसरा वराह अवतार हुआ। ये भगवान् वराह ही अपनी दाढ़के ऊपर रखकर डूबी हुई पृथ्वीको कारण समुद्रके ऊपर लाये थे। इन्होंने ही हिरण्याक्ष दैत्यका वध किया था। भगवती पराम्बाके दक्षिण हस्तकी अनामिकासे भगवान् नृसिंहका अवतार हुआ। इसी अवतारमें भगवान्ने हिरण्यकशिपु दैत्यका अपने नखोंसे फाड़कर वध किया था और प्रह्लाद भक्त की रक्षा की थी। भगवती की दक्षिण हस्तकी कनिष्ठिकाके नखसे पाँचवाँ वामनावतार हुआ। इस अवतारमें भगवान्ने राजा बलिसे तीन पग पृथ्वी दानमें माँगी थी और विश्वातीत रूप रखकर तीनों लोकोंको अपने तीन पगोंसे नाप लिया था।

इसी प्रकार जगज्जननी पराम्बाके वाम करांगुष्ठके नखसे छठा परशुराम अवतार हुआ। श्रीपरशुरामने सहस्त्रार्जुन पर क्रोध करके पृथ्वीको इक्कीस बार निःक्षत्रिय कर दिया। भगवतीके बायें हाथकी तर्जनी अँगुलीसे सातवाँ भगवान् रामका अवतार हुआ। इन्होंने युद्धमें लंका जाकर आततायी रावणको मारा। इस रामावतारमें देवताओंने वानररूप रखकर भगवान्की सहायता की। भगवती पराम्बा ललिताकी वाम करांगुलिकी मध्यमाके नखसे आठवाँ श्रीकृष्णावतार हुआ। इस अवतारमें भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंके संग महारासादि, अनेक केलि–क्रीड़ायें की एवं अनंगको परास्त कर उसे अपनी सेवामें स्वीकार किया। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रथम पटरानी रुक्मिणीके गर्भसे, जो साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपिणी थीं, अनंगने जन्म लेकर भगवान् शिवके तृतीय नेत्रसे दग्ध शरीरको पुनः प्राप्त किया। भगवती पराम्बा ललिताके वाम हस्तकी अनामिका अँगुलीके नखसे नौवाँ श्रीबुद्धावतार हुआ। इसी अवतारमें इन्होंने दीक्षा देकर हजारों मनुष्योंको भिक्षु आश्रमगामी बनाया। भगवतीकी वामहस्तकी कनिष्ठिका अँगुलीके नखसे दसवाँ अवतार कल्किका होगा। इनकी प्रख्याति अश्वावतारके रूपमें भी होगी, क्योंकि

इनके अश्वके खुरोंके आघातसे पृथ्वी पवित्र होगी । इसी अवतारमें कलियुग पलायन करेगा ।

इन्हीं महाशक्तिके करांगुलिके नखोंकी ज्योतिसे जहाँ भगवानके दशावतार होते हैं, वहीं ये महाशक्ति दस महाविद्याओंके रूपमें भी प्रादुर्भूत होती हैं ।

काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, त्रिपुरभैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी एवं कमला इन दस महाविद्याओंका भी भगवान्के दस अवतारोंसे सम्बन्ध आगम शास्त्रोंमें वर्णित है । शास्त्र भगवती कालीसे कृष्णावतार, तारासे रामावतार, भगवती छिन्नमस्तासे नृसिंहावतार, भगवती भुवनेश्वरीसे वामनावतार, बगलामुखीसे कूर्मावतार, धूमावतीसे मत्स्यावतार, भगवती त्रिपुराषोडशीसे परशुरामावतार एवं त्रिपुरभैरवीसे बलरामजीका अवतार, भगवती कमलासे बुद्धावतार और भगवती दुर्गासे त्रितापनाशी भगवान् कल्किका अवतार मानते हैं ।

इस प्रकार पू0 गुरुदेवकी परमाद्वैत दृष्टिमें परात्पर श्रीकृष्ण एवं भगवती ललिताम्बा दो थे ही नहीं । एक ही तत्वका जहाँ रसात्मक स्वरूप श्रीराधाकृष्ण थे, वे ही अपने ऐश्वर रूपमें भगवान् कामेश्वर–कामेश्वरी थे ।

{भगवान् कामेश्वर एवं कामेश्वरीके रक्तवर्णकी वासना और दोनोंकी एकता}

निरुपाधिक कहनेसे केवलत्व और सदानन्दपूर्ण कहनेसे धर्म विशिष्टत्वकी प्रतीति होती है । विशिष्ट और केवल अवयव–अवयवीके समान अयुत सिद्ध हैं। इनका परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध ही हो सकता है, न कि भेद घटित संयोगादि सम्बन्ध । प्रकृतमें कामेश्वर–कामेश्वरी विग्रहात्मक स्थूल दो रूपोंका सम्बन्ध भगवान् कामेश्वरके अंकमें स्थित कामेश्वरीके विराजमान होनेमें ही पर्यवसित है। स्थूल दृष्टिसे तो यह भेद सम्बन्ध ही प्रतीत होता है, परन्तु रहस्य दृष्टिमें यह स्वरूप शिवशक्ति सामरस्यात्मक ही है । इस प्रकारकी वासना ही इनके रक्तवर्णकी भावना है ।

जैसे भगवान् श्रीकृष्णका कृष्णत्व और भगवती श्रीराधाका राधात्व ह्लादिनीसार महाभाव से ही है, ठीक उसी प्रकार महाशक्ति भगवती कामेश्वरीके उल्लासरूप सान्निध्यसे ही भगवान् कामेश्वर शिवकी शिवता स्फुरित होती है।

भगवान् शंकर स्वामी सौन्दर्यलहरी स्तोत्रमें कहते हैं –

"शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं ।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।।

हिन्दी अर्थ

भगवान शिव परमात्मा यदि शक्ति सहित होते हैं, तभी सृजन, पालन, संहार आदि करनेमें समर्थ होते हैं । यदि ऐसा नहीं हो तो अपने नेत्र हिलानेकी भी सामर्थ्य उनमें नहीं संभव है ।

{पंच प्रेतासन}

श्रीविद्या भगवती कामेश्वरी पंच प्रेतासन पर विराजमान हैं । इसका रहस्य इस प्रकार है :–

भगवती ब्रह्मशक्ति कामेश्वरी जो ललिता, राजराजेश्वरी, भुवनेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी, षोडशी, भगवती श्रीराधा, सीता आदि नामोंसे विख्यात हैं, स्वशक्ति विलासके द्वारा ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र एवं सदाशिव पाँच नामोंको प्राप्त कर वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, आदि तत्तत् शक्तिके सान्निध्यसे सृष्टि, स्थिति, लय, निग्रह और अनुग्रह रूप पंचकृत्योंको सम्पादित करती हैं। जब ब्रह्मादि देव अपनी वामादि शक्तियोंसे रहित होते हैं और जिन कार्योंमें अक्षम होजाते हैं तब वे प्रेत कहे जाते हैं । ये प्रेत ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं इन्द्र ही भगवतीके सिंहासनके चार पाद हैं और सदाशिव फलक हैं, उसपर महाकामेश्वरके अंकमें भगवती महाकामेश्वरी विराजित हैं ।

{भगवती कामेश्वरीके चार आयुध}

भगवती कामेश्वरीकी चार भुजायें हैं । इनमें पाश, अंकुश, इक्षु, धनुष और पाँच पुष्प बाणोंके आयुधोंका ध्यान किया जाता है । उनका वास्तविक स्वरूप इस प्रकार है – छत्तीस तत्वोंमें राग ही उनका पाश नामक आयुध है। "रागः पाशः" {भावोपनिषद् सूत्र २३} । ये छत्तीस तत्व निम्न हैं – शिव तत्व, शक्ति तत्व, सदाशिव तत्व, ईश्वर तत्व, शुद्ध विद्यातत्व, माया, काल, कला, विद्या, नियति, राग, पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, अग्नि {तेजस}, जल, पृथ्वी । इनमें राग होना ही पाश नामक आयुध है । "द्वेषोऽकुंशः" {भावोपनिषद् सूत्र २४} इन छत्तीस तत्वोंसे द्वेष, वैराग्य ही अंकुश नामक आयुध है। इक्षु धनुः । मन इक्षु धनुः {भावोपनिषद् सूत्र २२} । संकल्पविकल्पात्मक मनही भगवतीका इक्षु धनुष है ।

शब्दादि तन्मात्राः पंच पुष्प बाणाः {भावोपनिषद् सूत्र २;} । शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध – पंच तन्मात्रायें ही भगवतीके हाथमें पाँच पुष्प बाण हैं।

उत्तर चतुःशती शास्त्रमें इन आयुधोंका यथार्थ स्वरूप इस प्रकार कहा है –

इच्छा शक्तिमयं पाशमंकुशज्ञान रूपिणम् ।
क्रियाशक्तिमये बाणाः धनुषदधदुज्ज्वलम् ।।

अर्थात् पाश – इच्छाशक्ति, अंकुश – ज्ञानशक्ति एवं बाण तथा धनुष क्रियाशक्ति स्वरूप हैं ।

{भगवतीकी पूजा}

पू0 गुरुदेव सन्यासी होनेके नाते उपचार विधियोंको पूर्ण नहीं कर पानेके कारण बाह्य पूजा सम्पादित नहीं करते थे । वैसे बाह्य पूजा अनेक पद्धतियोंमें अनेक प्रकारसे वर्णित है । इसके बारेमें विस्तार भय से यहाँ वर्णन नहीं किया जा रहा है । पूज्य गुरुदेव श्रीराधाबाबा रहस्य–पूजा ही किया करते थे, अतः उसका ही अति संक्षेपमें दिग्दर्शन किया जा रहा है ।

पूर्ण सर्वव्यापक आह्लादमयी चित् शक्तिकी अपनी महिमामें प्रतिष्ठा ही भगवतीको आसन प्रदान करना है । वियत्, व्योम, तेज, रस एवं गन्ध {जल एवं पृथ्वी} इन स्थूल प्रपंच रूपोंके नाम रूपात्मक मलका सच्चिदानन्दैकरूपत्व भावना रूप जलसे चिच्छक्तिके चरणोंमें प्रक्षालन करना ही पाद्यार्पण करना है। भगवती चित्शक्तिके करोंमें सूक्ष्म प्रपंचके नामरूपात्मक मलका सच्चिदानन्दैक रूप भावना जलसे प्रक्षालन करना ही अर्घ्य प्रदान करना है । सच्चिदानन्द रूप भावनाका जो भी कवलीकरण है वही आचमन प्रदान करना है ।

अखिल अवयव अवच्छेदसे सत्व, चित्व, आनन्दत्वादि भावना जल संपर्क ही भगवतीका स्नान है । उक्त अवयवोंमें प्रसक्त भावनात्मक वृत्ति विषयताकी वृत्ति अविषयत्व भावना रूप वस्त्रसे प्रोञ्छन ही देह प्रोञ्छन है । निर्विषयत्व, निरञ्जनत्व, अजरत्व, अशोकत्व, अमृतत्वादि अनेक धर्मरूप आभरणोंमें धर्मीसे अभेद भावना करना ही आभरणार्पण है । स्वशरीर घटक पार्थिव भावोंकी जड़ता हटाते हुए उनमें चिन्मात्र भावना करना ही गन्ध विलेपन है । इसीतरह स्वशरीर घटक आकाश भागोंकी चिन्मात्र भावना करना ही पुष्पार्पण है । वायवीय भागोंकी चिन्मात्र भावना करना ही धूपार्पण

है । तेजस भागोंकी चिन्मात्र भावना करना दीप दर्शन है । अमृत भागोंकी चिन्मात्र भावना करना नैवेद्य अर्पण करना है । षोडशान्त इन्दु मण्डलकी चिन्मात्रता भावना करना ही ताम्बूलार्पण है । परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी आदि निखिल वाणीका नादरूपसे परात्पर परब्रह्ममें उपसंहार करनेकी भावना ही भगवतीकी स्तुति करना है । विषयोंकी ओर दौड़ने वाली चित्तवृत्तियोंका विषय जड़ता निरसन पूर्वक ब्रह्म शक्तिमें विलय करनाही प्रदक्षिणी करण है । चित्तवृत्तियोंको विषयोंसे परावर्त्तित कर ब्रह्मैक प्रवण करना ही प्रणाम करना है ।

यह अत्यन्त संक्षेपमें पू० गुरुदेव द्वाराकी जानेवाली भगवती पराम्बाकी पूजाका दिग्दर्शन है । आगे पू० गुरुदेव महायागक्रमसे जो पूजा किया करते थे, उसे अलग परिच्छेदके रूपमें दिया जायगा ।

पू० गुरुदेव महायागक्रमसे हजारों लोगोंको स्मरण करके अपने साथ एकात्म करके प्रति दिवस भगवतीकी चारों प्रहरकी पूजा सम्पादित किया करतें थे । इसीको वे कहा करते थे कि भैया ! मैं तेरे लिये प्रतिदिन चार बार विशुद्ध प्रेमामृतसे भरी थाली परोसकर लाता हूँ परन्तु तुम मेरे प्रेमको स्वीकार ही नहीं करते ।

{भगवतीका साक्षात् विग्रह}

भगवती आद्याशक्ति ललिताके चतुर्विध रूप

{१} भक्तोंकी उपासनाके फलीभूत होनेपर भगवती अपने स्थूल रूपमें भक्तोंको प्रत्यक्ष होती हैं । पू० गुरुदेव के सम्मुख ई० ९–५–५१ तदनुसार अक्षय तृतीया सं० २००८ वि० के दिन कर चरणादि अवयवोंसे भूषित निरतिशय सौन्दर्य विग्रह धारणकर भगवती ललिता प्रकट हुई थीं । पू० गुरुदेवके नेत्रोंके सम्मुख उनका लोकोत्तर आह्लादक महातेजोराशि समन्वित रूप जब प्रत्यक्ष हुआ तो पू० गुरुदेव अति चमत्कृत एवं रोमाञ्चित हो उठे थे। पू० गुरुदेवने उनका यथाविधि भावात्मक पूजन किया एवं अपने हाथोंसे उनके चरण स्पर्श किये । पू० गुरुदेव कहते थे कि इन हड्डी–मांस युक्त हाथोंसे भगवतीके परम सुकोमल, निराविल, पवित्र चरणोंको स्पर्श करनेमें मुझे उसी प्रकार हिचक हो रही थी, जैसे कोई मलिन शूकर परम पवित्र देव–प्रतिमा का संस्पर्श करे । उनकी हिचकिचाहट देखकर भगवती मुसकायीं। तत्पश्चात् उनका समग्र शरीर ही परम दिव्य होगया और उस दिव्य शरीरसे पू० गुरुदेव द्वारा भगवतीका परम दिव्य उपचारोंसे पूजन सम्पन्न हुआ ।

{भगवतीका मंत्रात्मक विग्रह}

{२} पू० गुरुदेवके सम्मुख परम भट्टारिका राजराजेश्वरी भगवती महात्रिपुर सुन्दरीका दूसरा षोडशाक्षरी मन्त्रात्मक रूप भी उसी दिवस जिस दिवस पू० गुरुदेवको उनके दिव्य दर्शन हुए थे, भगवतीने प्रकट किया था। बहुत काल पश्चात् पू० गुरुदेवने श्रीमुखसे इन मंत्रका दान श्रीपोद्दार महाराजकी पुत्री सावित्रीबाई फोगलाको दिया।

ललिता सहस्रनाममें भगवती त्रिपुरसुन्दरीके मंत्रात्मक विग्रहका निम्न प्रकारसे वर्णन आता है --

श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपंकजा ।
कण्ठाधःकटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी ।
शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी ।
मूलमंत्रात्मिका मूलकूटत्रयकलेवरा ।।

वाग्भव कूट एवं पञ्चदशी अथवा षोडशाक्षरी मंत्रके प्रथम पाँच अथवा छः अक्षरोंका वाग्भव कूट इनका मुख-कमल है । द्वितीय मध्यकूट इनका कण्ठके नीचेका कटिपर्यन्त भाग है और तृतीय शक्तिकूट इनका कटिसे नीचे चरणतकका भाग है ।

मंत्रमय देवताके मंत्रवर्णोंमें ही देवताके शरीर अवयवोंकी कल्पना मंत्रद्रष्टा महासिद्ध ऋषियोंने की है, अतः यह मंत्रात्मक स्वरूप मन्त्रध्वनि श्रवण रूपमें कर्णेन्द्रियोंसे तथा मंत्रोच्चारण रूपमें वागिन्द्रियसे गोचर होता है। जैसे रूप नेत्रोंसे प्रत्यक्ष होता है, उसी प्रकार कर्णेन्द्रियों एवं वागिन्द्रियोंसे गोचर होनेके कारण मंत्रमयस्वरूपको, देह अवयवों सहित रूपसे किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं आँकना चाहिये अथवा मंत्र पर अश्रद्धा होनेके फलस्वरूप मंत्र अपराध घटित होता है ।

इसी प्रकार सर्व मंत्रोंका मूल मातृका सरस्वत्यात्मक अथवा भारती विद्या रूप भी मंत्रात्मक रूप कहा जाता है । जैसे उदाहरण रूपमें स्वर एवं व्यंजन रूप पचास वर्णोंसे ही विश्वके सभी देवताओंके मंत्र निकले हैं, अतः इन वर्णोंको भी देवताका मंत्रात्मक रूप माना जाता है ।

पूज्य गुरुदेव पूजा करते समय इन मातृकाओंसे अपने अंगोंमें न्यास करते थे ।

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः अं नमः शिरसि {सिरमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः आं नमः मुखवृत्ते {मुखमें}

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः इं नमः दक्षनेत्रे {दक्षिण नेत्रमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ईं नमः वामनेत्रे {वाम नेत्रमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः उं नमः दक्षकर्णे {दक्षिण कानमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ऊँ नमः वामकर्णे {वाम कानमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सोः ऋं नमः दक्षनासापुटे (दाहिने नासापुटमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ॠं नमः वाम नासापुटे {बायें नासापुट में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः लृं नमः दक्ष कपोले {दक्षिण कपोल में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः लृं नमः वाम कपोले {वाम कपोल में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे {ऊपर के ओष्ठ में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ऐं नमः अधरोष्ठे {नीचे के अधर में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ओं नमः ऊर्ध्व दंत पंक्तौ {ऊपर दंत पंक्ति में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः औं नमः अधः दंत पंक्तौ {नीचे दंत पंक्ति में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः अं नमः जिह्वाग्रे {जीभ के अग्रभाग में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः अः नमः कण्ठे {कण्ठ में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः कं नमः दक्ष बाहुमूले {दक्षिण बाहु के मूल में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः खं नमः दक्ष कूर्परे {दषिण बाजू में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः गं नमः दक्ष मणिबन्धे {दक्षिण मणिबन्ध में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः घं नमः दक्ष करांगुलिमूले {दक्षिण हाथ की अंगुलियों के मूल में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ङं नमः दक्ष करांगुल्यग्रे {दक्षिण हाथ की अँगुलियों के अग्र भाग में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः चं नमः बाम बाहुमूले {बाम बाहुमूल में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः छं नमः वाम कूर्परे {बाम बाजू में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः जं नमः वाम मणिबन्धे {वाम मणिबन्ध में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः झं नमः वाम करांगुलिमूले {वामकर की अँगुलियों के मूल में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ञं नमः वाम करांगुल्यग्रे{ „ „ अग्रभाग में}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः टं नमः दक्षोरुमूले (दक्षिण जंघाके मूलमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ठं नमः दक्ष जानुनि (दक्षिण जानुमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ड़ं नमः दक्ष गुल्फे (दक्षिण गुल्फमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ढं नमः दक्ष पादांगुलिमूले (दाहिने पैरकी अँगुलियोंके मूलमें)

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः णं नमः दक्ष पादांगुल्यग्रे (दाहिने पैरकी अँगुलियोंके अग्रभागमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः तं नमः वामोरूमूले (बायें जंघामूलमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः थं नमः वाम जानुनि (बायें जानुमें)
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः दं नमः वाम गुल्फे {वाम ऐडीके ऊपर की गाँठमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः धं नमः वाम पादांगुलिमूले
{वाम पैरकी अँगुलियोंके मूलमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः नं नमः वामपादांगुल्यग्रे
{वाम पैरकी अँगुलियोंके अग्रभागमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः पं नमः दक्ष पार्श्वे {दक्षिण बगलमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः फं नमः वाम पार्श्वे {वाम बगलमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः बं नमः पृष्ठे {पीठमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः भं नमः नाभौ {नाभिमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः मं नमः जठरे {पेटमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः यं नमः हृदये {हृदयमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः रं नमः दक्षकक्षे {दक्षिण काँखमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः लं नमः गलपृष्ठे {गलेके पीछेके भागमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः वं नमः बामकक्षौ {बायीं काँखमें}
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः शं नमः हृदयादि दक्षकरांगुल्यन्ते
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः षं नमः हृदयादि वामकरांगुल्यन्ते
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः सं नमः हृदयादि दक्षपादांगुल्यन्ते
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः हं नमः हृदयादि वामपादांगुल्यन्ते
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः लं नमः हृदयादि कट्यादि पादांगुल्यन्ते
ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः क्षं नमः हृदयादि ब्रह्मरंधान्ते

"एतस्यां साधितायां तु सिद्धास्यान्मातृका यतः"

इस न्यासको करनेसे पू0 गुरुदेव सर्व मन्त्रमय और सृष्टिके सर्व देवतामय होकर भगवतीकी पूजा करते थे ।

{भगवतीका वासनात्मक रूप}

तीसरा भगवतीका वासनात्मकरूप है, जिसमें ललिता देवी नित्य अखण्ड एकरस निवास करती हैं, महा पुण्यवान् साधकोंके लिये केवल मन इन्द्रियोंसे ही यह ग्रहीत होता है । आग'म शास्त्रोंमें कहा है – "चैतन्यमात्मनो रूपम्" । आनन्दोल्लास स्वरूपिणी जगदम्बाका स्वात्मशक्तिचैतन्यही स्वरूप है । आत्म चैतन्यका अनुभव मन ही कर पाता है । उत्तम मध्यमादि

अधिकारी भेदसे ये तीनों रूप साधकोंकी उपासनाके योग्य हैं। इनसे अतिरिक्त तुरीय रूप जो वाक्, मन आदि सभी इन्द्रियोंसे अतीत है, उसका केवल परम पूज्य गुरुदेव जैसे महासिद्ध मुक्त लोग ही अखण्ड अहंताके रूपमें अनुभव करते हैं। वह रूप भी अनन्तानन्त है।

{गुरु, मंत्र एवं देवतामें अभेद भावना}

आत्मस्वरूपिणी भगवती श्रीविद्या ललिता, उसका मंत्र और उस मंत्रके उपदेष्टा महासिद्ध गुरु – इन तीनोंमें दृढ़ अभेद भावनाकी पूर्णता होना ही परम सिद्धिलाभ है। पू० गुरुदेव श्रीराधाबाबाने तो भगवान् दक्षिणामूर्त्तिको ही गुरु रूपमें स्वीकार कर उपासनाक्रम प्रारम्भ किया था अतः उन्हें अपनी आत्मशक्तिकी उनसे अभेद मावना करनेमें कहीं कोई कठिनाई नहीं थी। भगवान् आदि शंकर स्वामिकृत स्तुति ही पूर्ण अभेदात्मक है अतः भगवान् दक्षिणामूर्त्ति एवं भगवतीमें अभेद भावनाकर उन्हें अपनी स्वात्मा समझनेमें पू० गुरुदेवको कहीं कोई कठिनाई नहीं थी और गुरुदेवको श्रीविद्या भगवतीके साथ तत्क्षण ही पूर्ण अभेदकी सिद्धि हो गयी थी। फिर पूज्य गुरुदेव तो गुरुकृपाके पूर्ण अधिकारी थे ही। सुन्दरी तापनीयोपनिषद्में कहा गया है –

यथा घटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थवाचकाः।
तथा मंत्रो देवता च गुरुश्चैकार्थवाचकाः॥

जैसे घट, कलश और कुम्भ–ये तीनों शब्द एकही अर्थके वाचक हैं, वैसे ही देवता, मंत्र और गुरु – ये तीनों शब्द भी एक ही अर्थके द्योतक हैं।

श्रीविद्याके बारह सम्प्रदाय तथा कामराज विद्याका महत्व

भगवती श्री विद्याके बारह उपासक प्रसिद्ध हैं। {१} भगवान मनु, {२} चन्द्रमा, {३} कुबेर, {४} लोपामुद्रा, {५} कामदेव {मन्मथ}, {६} अगस्त्य, {७} अग्नि, {८} सूर्य, {९} इन्द्र, {१०} स्कन्द, {११} शिव, {१२} दुर्वासा {क्रोध भट्टारक मुनि}।

इनमेंसे प्रत्येकका पृथक्–पृथक् सम्प्रदाय था। इस समय भारतमें मन्मथका कादि एवं लोपामुद्राका हादि सम्प्रदाय ही प्रचलित है। त्रिपुरा रहस्य माहात्म्य खण्डके अनुसार भगवान् मन्मथानन्दनाथने अपनी निर्व्याज आराधनासे भगवती ललिता महाभट्टारिकासे अनेक दुर्लभतम वर प्राप्त किये और स्व उपासित कामराज विद्याके उपासकोंके लिये भी बहुतसी सुविधायें प्राप्त कर लीं। तबसे कामराज विद्याका ही विशेष प्रचार है।

{कामराज विद्याका स्वरूप}

कामराज विद्या ककारादि पञ्चदश वर्णात्मक है। इसीको कादि विद्या भी कहते हैं। तंत्रराजमें भगवान् शिव देवीसे कहते हैं – हे

पार्वती ! कादि विद्या तुम्हारा स्वरूप ही है और उससे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

कादि विद्याका उद्धार अथर्वण त्रिपुरोपनिषद्में इस प्रकार है :–

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।

पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्यैषा विश्वमातादि विद्या ।।ऊँ।।

काम {क}, योनि {ए}, कमला {ई}, वज्रपाणि–इन्द्र {ल}, गुहा {ह्रीं}, ह, स, मातरिश्वा–वायु {क}, अभ्र {ह}, इन्द्र {ल}, पुनः गुहा {ह्रीं}, स,क,ल और माया {ह्रीं} यह सर्वात्मिका जगन्माताकी मूल विद्या है और यह ब्रह्मस्वरूपिणी है ।

{भावार्थ}

शिवशक्ति–अभेदरूपा, ब्रह्म–विष्णु–शिवात्मिका, सरस्वती–गौरी–लक्ष्मीरूपा, अशुद्ध–मिश्र–शुद्धोपासनात्मिका, समरसीभूत शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूपका निर्विकल्प ज्ञान देने वाली, सर्वतत्वात्मिका महात्रिपुरसुन्दरी – यही इस मंत्रका भावार्थ है ।

यह मंत्र सब मन्त्रोंका मुकुटमणि है एवं मंत्रशास्त्रमें पंचदशी, कादि श्रीविद्याके नामसे प्रसिद्ध है । नित्य षोडशिकार्णव ग्रन्थमें इसके विस्तारसे अनेक भेद बताये हैं । "वरिवस्या रहस्य" नामक ग्रन्थमें भी इसके विस्तृत अर्थ अवगम्य हैं । श्रुतियोंमें भी ये मन्त्र क्वचित् स्वरूपोच्चार, क्वचित् लक्षणा, लक्षितलक्षणासे और कहीं वर्णके पृथक्–पृथक् अवयव दरसाकर जानबूझकर विश्रृंखल रूपसे कहे गये हैं । इससे यह मालूम होता है कि ये मन्त्र परम गोपनीय और महत्वपूर्ण हैं ।

षोड़शाक्षरी मन्त्र इससे भी परम गुह्य है जो मात्र गुरुमुखसे परम्परासे प्राप्त होना संभव है । पू० गुरुदेवको साक्षात् भगवतीने षोड़शाक्षरी मन्त्रका उपदेश किया था ।

{भगवती लोपामुद्रा ही हादि विद्या हैं}

यह हादि विद्या भी पञ्चदश वर्णात्मिका है । भगवती कामेश्वरांकस्थिता कामेश्वरीके पूजा मन्त्रोंमें यह प्रचलित है । अवशिष्ट मनु–चन्द्रादि दस विद्याऐं केवल आम्नाय पाठमें ही उल्लिखित हैं । प्रचलित उपासना पद्धतियोंमें उनका विशेष उपयोग नहीं है ।

{श्रीविद्या ही त्रिपुरा हैं}

श्रीकामराज विद्याकी अधिष्ठातृ "श्रीविद्या" का ही नामान्तर त्रिपुरा है। त्रिमूर्त्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा सरस्वती, लक्ष्मी एवं पार्वतीसे भी पुरा

अर्थात आद्या जो शक्ति हैं, वे त्रिपुरा हैं । ये गुणत्रयातीता हैं, त्रिगुण नियन्त्री शक्ति हैं, इसलिये ये भगवती ब्रह्माणी, लक्ष्मी एवं पार्वतीकी भी आराध्या हैं । गौड़पादीय सूत्रमें कहा है "तत्वत्रयेण भिदा" । त्रिमूर्त्ति {ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश} की जननी होनेसे, त्रयी {ऋक्, यजुः एवं साम} त्रिवेदमयी होनेसे, महा–प्रलयमें त्रिलोकीको अपनेमें लीन करलेनेसे, जगदम्बा श्रीविद्याका त्रिपुरा अथवा त्रिपुरसुन्दरी नाम प्रसिद्ध हुआ है । नामकेश्वर तंत्रमें इनको ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति एवं क्रियाशक्ति स्वरूपिणी बताया है । इच्छाशक्ति इनका शिरोभाग है, ज्ञानशक्ति मध्यभाग एवं क्रियाशक्ति इनका अधो भाग है। शक्ति–त्रयात्मक होनेसे ये त्रिपुरा कहलाती हैं ।

{भगवती त्रिपुरसुन्दरीका माहात्म्य}

इन पराशक्तिका माहात्म्य अवर्णनीय है । सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, त्रिलोकेश्वर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश भी अभीतक इनका न तो पूर्ण स्वरूप पहचानते–जानते हैं, न ही इनका धाम कहाँ है, उसका इनको ज्ञान है ।

जैसे भगवान् श्रीकृष्णकी गति ब्रह्मा–ब्रह्माणी, शिव–पार्वती, भगवान् विष्णु एवं लक्ष्मी, इन्द्रादि लोकपालों, मरीचि आदि प्रजापतियों, बड़े–बड़े ऋषियों मुनियोंके लिये अगम्य रही – वे भगवान् श्रीकृष्णका महा प्रस्थान देखने बड़ी उत्सुकतासे वहाँ एकत्रित हुए, परन्तु जब भगवान् श्रीकृष्णने अपने धाममें प्रवेश किया, कोई भी न तो उनके धामका अनुसन्धान पा सका और न ही उनकी गति जान सका, इसी प्रकार भगवती भी अविज्ञात गति हैं। जैसे अग्निकी ज्वाला प्रज्ज्वलित अंगार रूपमें समष्टिमें आविर्भूत होकर जब शान्त होती है, तब वह कहाँ गयी अथवा किसमें अन्तर्भूत है – यह ज्ञात नहीं होता, वैसे ही समस्त मातृमण्डल संघट्टरूपिणी महाचैतन्यात्मिका श्रीविद्याका क्या स्वरूप है, वे कहाँसे कैसे आविर्भूत होती हैं और किसमें अन्तर्भूत होती हैं–यह किसीको भी ज्ञात नहीं है । युक्ति एवं तर्कका तो उनमें प्रवेश ही वर्जित है । "अहमस्मि"– मैं हूँ, इस प्रतीतिके सिवा उनकी उपलब्धिका दूसरा प्रमाण असंभव है । वेद, शास्त्र, तन्त्र, पुराण सभी इनके वर्णनमें असमर्थ हैं । "वस्तुतः ये भगवती ऐसी हैं" इस प्रकार वर्णन करनेकी किसीमें सामर्थ्य संभव ही नहीं । प्रत्यक्षादि प्रमाण तो प्रमेय मात्रका ही ग्रहण करते हैं, उन अप्रमेय शक्तिके स्वरूप तक तो उनकी पहुँच ही नहीं हो सकती । "मैं हूँ" इसी आह्लादमें ये सदा निमग्न रहती हैं । शास्त्रोंमें जहाँ जो भी वर्णन है, वह सब इनके लीला विग्रहोंका ही वर्णन है । इनके

असंख्य लीला–विग्रह हैं और उनका महात्म्य भी अनन्त है ।

{श्रीविद्याके लीला–विग्रह}

वैसे तो भगवतीके अनन्त लीला–विग्रह हैं, परन्तु त्रिपुरारहस्य माहात्म्य खण्ड तथा ब्रह्माण्ड पुराण, उत्तरखण्ड आदि इतिहासोंमें इनके मुख्य विग्रहोंकी परिगणना इस प्रकार है –

{१} कुमारी – इन्द्रादि देवोंका गर्व–परिहार करनेके लिये भगवती कुमारी रूपमें प्रकट हुई थीं ।

{२} त्रिरूपा – कारण पुरुष ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशको उनके अधिकृत सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय कार्योमें सहायता करनेके लिये भगवतीने वाणी, लक्ष्मी, रुद्राणी आदि शक्तियोंको अपने शरीरसे प्रकटकर उन तीनोंसे इनका विवाह करा दिया ।

{3} काली, चण्डिका, कात्यायनी एवं दुर्गा इन चारों अवतारोंकी कथा सप्तशतीमें आती है ।

{4} भारती एवं भगवती ललिताकी कथा त्रिपुरारहस्य माहात्म्य खण्डमें वर्णित है – विस्तार भयसे यहाँ नहीं दी जारही है । भगवती ललिताकी कथा संक्षेपमें इतनी ही है कि भण्ड नामके असुरने भगवान् शिवसे अभय रूप वर प्राप्त कर लिया था । वह त्रिलोकाधिपति हो गया । वह इन्द्रादि देवताओंसे अपनी पालकी कहारोंकी तरह उठवाया करता था । उसने असुरोंकी राजधानी शोणितपुरको मयासुर द्वारा स्वर्गसे भी सुन्दर बनवायी । उसका नाम शून्यकपुर रखा । उसके भयसे इन्द्राणी भगवती गौरीके आश्रयमें कैलाश चली गयीं । उसने कैलास जाकर इन्द्राणीकी माँगकी । भगवान् गणेशजी अपने प्रमथ गणों सहित उससे युद्ध करने लगे । अपने पुत्रकी सहायतामें भगवती गौरीने भी उससे युद्ध किया । भगवती गौरी जब उसका संहार करने जा रही थीं, तभी ब्रह्माजीने गौरीसे भगवान् शंकर द्वारा दिये उसे अमरत्वके वरदानकी बात कही। लाचार गौरीको उसे छोड़ना पड़ा ।

अब देव लोगोंने असहाय होकर भगवती त्रिपुराकी शरण ली । जब देवलोग माताकी स्तुति कर रहे थे उस समय ज्वालाके मध्यसे महा घोर शब्द करती तेजस्विनी भगवती प्रकट हुईं । उन्होंने देवताओंसे विशेष तप करनेकी बात कही । देवलोग तप करने लगे । इसी समय भण्डासुरने पुनः उनपर आक्रमण कर दिया । देवताओंने भगवतीकी प्रार्थना करते हुए

अपनेको यज्ञकुण्डमें होम कर दिया । देवोंको भस्मीभूत समझ वह असुर चला गया । इसके पश्चात् तडित्प्रभा–सी भगवती त्रिपुरा प्रकट हुई । श्रीमाताने देवोंकी प्रार्थनापर सुमेरु पर्वत पर रहना स्वीकार कर लिया । भगवान् विश्वकर्माने ब्रह्माजीके कथनानुसार श्रीपुरका निर्माण किया । फिर माता श्रीचक्रात्मक रथ पर आरूढ़ होकर भस्मासुरको मारनेको उद्यत हुई । भगवतीकी दो शक्तियों मन्त्रिणी एवं दण्डिनी {राजमातंगी एवं वाराही} और इतर अनेक शक्तियोंने अपने प्रबल पराक्रमसे दैत्य सैन्यमें खलबली मचा दी। अन्तमें भगवतीने पाशुपतास्त्रका प्रयोगकर समस्त असुर सैन्यको शून्यकर दिया और महा कामेश्वरास्त्रसे समस्त शून्यपुर एवं भण्ड को अपने पुत्र–पौत्रों सहित शून्यमें विलीन कर दिया । यह भगवती श्रीविद्याका अति संक्षेपमें परिचय है । सामान्यतः 'श्री' शब्द लक्ष्मीके अर्थमें ही प्रयुक्त होता है । परन्तु पुराणेतिहासोंमें वर्णित "श्री" शब्दका मुख्यार्थ महा त्रिपुरसुन्दरी देवी ही है।

महालक्ष्मीने भगवतीकी चिरकाल आराधनाकर जो अनेक वर प्राप्त किये थे उनमें "श्री" शब्दसे ख्यात होनेका भी उन्हें एक वर प्राप्त हुआ था । तभीसे "श्री" शब्दका अर्थ महालक्ष्मी होने लगा । मुख्यतया "श्री" नाम तो भगवती परम आद्याशक्ति भगवतीका ही है । इनकी प्रतिपादिका विद्या अथवा मन्त्र "श्रीविद्या" है। वाच्य वाचकको अभेद मानकर इस मन्त्रकी अधिष्ठातृ देवी "श्रीविद्या" कही जाती हैं ।

अध्याय तीसरा

{पू0 गुरुदेवकी साधनामें भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी साधनाका प्रयोजन}

किसीके भी मनमें यह प्रश्न स्वाभाविक ही उठ सकता है कि पू0 गुरुदेव राधाबाबाको जब भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हो चुके थे, उनका उनके लीला–राज्यमें प्रवेश हो चुका था, वे मंजरीभावमें भगवानकी अष्टयाम सेवामें सम्मिलित हो चुके थे, फिर उन्हें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी उपासनाका आदेश किस हेतुसे दिया गया।

इस सम्बन्धमें पू0 गुरुदेव द्वारा जो कुछ बताया गया है, उसे यहाँ उल्लेख किया जा रहा है :–

विश्वके सभी सन्तोंमें अथाह करुणावृत्तिकी प्रधानता रहती ही है। वे जिस प्रकार स्वयं आत्यन्तिक सुखसिन्धुमें डूबे रहते हैं, उसी प्रकार जगत्‌के समस्त प्राणियोंको और विशेषतया उनसे जुड़े हुए जीवोंको तो उसमें निमग्न करनेकी चाह करते ही हैं।

एकबार सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी अन्तरंग सत्संग गोष्ठीमें पू0 गुरुदेव बैठे थे। यद्यपि पू0 गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराजके पास ही व्रत लेकर अखण्ड रूपसे रह रहे थे, परन्तु जब श्रीसेठजी एवं श्रीपोद्दार महाराज एक ही नगरमें होते और श्रीसेठजी सत्संग कराते होते तो उन दिनोंमें श्रीसेठजीके सत्संगमें गुरुदेव अवश्य सम्मिलित होते थे। श्रीसेठजी कह रहे थे कि –"शास्त्रोंमें उल्लेख है कि रामजी अपने साथ सभी अयोध्यावासियोंको सशरीर जीवन्मुक्ति पद देकर साकेतधाम लेगये। मात्र अयोध्याके राजा होनेका उन्होंने सम्पूर्ण प्रजाको मुक्त करके कर्त्तव्य निर्वाह किया। अपनी प्रजाको तो उन्होंने साकेत–धाम दिया ही, रावण, खरदूषणादि जितने राक्षसोंका उनके द्वारा वध हुआ, वे भी उनकी अहैतुकी कृपासे साकेत–धामको गये।"

"इसी प्रकार भगवान श्रीकृष्णने भी जितने असुर राजाओं और सेनाओंका वध किया, यहाँ तक कि जरासन्ध सत्रहबार तेईस–तेईस अक्षोहिणी सेना लेकर आया और महाभारतमें भी जो लाखों प्राणी मारे गये, सभीको अपनी

अमोघ कृपा दृष्टिसे मुक्त कर दिया । जितने असुर–कंस, शिशुपाल, दंतवक्रादि उनके हाथों मारे गये थे, वे सभी उनसे स्वरूपदान पाकर कृतार्थ होगये। ब्रजमण्डलको तो वे अपने साथ ही गोलोक धाम लेगये । ये कुछ परमार्थ जगत्में भगवदवतारों द्वारा बहायी जाने वाली कृपासमुद्रकी सर्वोच्च लहरें हैं। परन्तु भागवती करूणा–समुद्रका ऐसा उच्छलन अभीतक नहीं हुआ है कि कोई अवतार अथवा सन्त अपने समग्र दृष्य जगत्का ही कल्याण कर देता । आजतक तो ऐसा हुआ नहीं है । क्योंकि यदि किसीने ऐसा किया होता तो हम सभी विषयी प्राणी इसभवसागरमें पड़े नहीं होते ।"

श्रीसेठजी श्रीमद्भगवद्गीता पर बहुत निष्ठा रखते थे । अतः उनका कथन था कि यदि विश्वमें घर–घर गीताका तत्व एवं रहस्य सहित अध्ययन–मनन होने लगे एवं इसका प्रचार होजाय तो भगवती गीता महारानी सम्पूर्ण मनुष्य जातिको मुक्त कर सकती है ।

जबतक पू0 गुरुदेव विवर्त्तवादी अद्वैत मतावलम्बी वेदान्ती सन्यासी थे तबतक तो वे भी श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाकी तरह प्रपञ्चको अपनी ही मिथ्या भ्रम–मूलक प्रतीति मानते थे । उनके सम्मुख कोई जीव था ही नहीं, मात्र ब्रह्म ही ब्रह्म था । जैसे श्रीसेठजीकी तात्विक दृष्टिमें सर्वत्र अखण्ड घन आनन्द ही सत्य था, पू0 गुरुदेव भी एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित सच्चिदानन्दघन भगवान् वासुदेवको ही देखते थे ।

परन्तु इधर उनके मनमें यह बात दृढ़ होगयी थी कि यह सम्पूर्ण जगत् अघटन–घटना–पटीयसी भगवान् श्रीकृष्णकी योगमाया शक्तिका परम स्वातंत्र्यमूलक संकल्प भर है । अतः वे अपने आराध्य सगुण साकार भगवान् श्रीकृष्णसे ही प्रार्थना करने लगे –

"सो दासी रघुवीर कै समुझै मिथ्या सोपि ।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि ।।"

"हे प्रभो ! मायाकी प्रचण्ड सेना संसार भरमें छायी हुई है । कामादि {काम, क्रोध एवं लोभ} उसके सेनापति हैं और दम्भ, कपट और पाखण्ड योद्धा हैं, परन्तु यह माया तुम्हारी दासी है । यद्यपि समझ लेने पर यह मिथ्या ही है, किन्तु समझना इतना सरल नहीं है, जैसा कहा जाता है । यह आपकी कृपाके बिना छूटनी असंभव है । अतः हे प्रभो ! जिस प्रकार आप भक्तराज प्रह्लादके सम्मुख उसके सम्यक् दर्शन मात्रसे उसके तात्त्विक

कथनको सत्य करनेके लिये नृसिंह रूपमें प्रकट होगये, उसी प्रकार मेरी प्रार्थनाके फलस्वरूप मेरे सम्पूर्ण दृष्यमें अपनेको अभिव्यक्त कर दीजिये । जैसे ही आप मेरी सत्य दृष्टिके फलस्वरूप मेरेसे जुड़े सम्पूर्ण जीव समुदायमें व्यक्त होओगे, वे सम्पूर्ण प्राणी मायामुक्त होकर आपके अनन्त सौन्दर्य–माधुर्ययुक्त स्वरूपका दर्शन प्राप्त करके विषयान्धतामुक्त हो जावेंगे । उन्हें सर्वत्र आपका रस–विलास अनुभव होने लगेगा ।

पू0 गुरुदेवका आराध्य प्रियतम श्रीकृष्ण पर इतना अटूट अखण्ड विश्वास था कि वे अनहोनीको भी संभव करने के लिये उनसे प्रार्थना करने लगते थे ।

पू0 गुरुदेवकी प्रार्थना सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण सचमुचही करुणार्द्र हो उठे । भगवान् श्रीकृष्णने पू0 गुरुदेवके सम्मुख प्रत्यक्ष प्रकट होकर यह कहा कि –"तुम मेरी ऐश्वर रूपा लीलाविधातृ शक्ति भगवती राजराजेश्वरी योगमाया त्रिपुरसुन्दरी ललिताकी उपासना करो । वे सर्वाभीष्ट फलदात्री हैं। तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा ।"

भगवान् श्रीकृष्णने पू0 गुरुदेवके सम्मुख यह तथ्य भी उद्घाटित किया कि भगवती श्रीविद्या ललिताकी उपासना अनादिकालीन है । आदि शंकराचार्यके परमगुरु गौड़पाद स्वामी, स्वयं शंकराचार्य एवं उनके तदनुवर्त्ती सुरेश्वर, पद्मपाद, विद्यारण्य स्वामी प्रभृति सभी अद्वैत वेदान्ती आचार्य इनके उपासक थे । मीमांसकोंमें आचार्य प्रवर खण्डदेवके शिष्य शम्भु भट्ट, भास्कर भट्ट प्रभृति इसी विद्याके उद्भट उपासक थे । महाप्रभु चैतन्यदेवके अभिन्न हृदय माने जानेवाले नित्यानन्द महाप्रभु भी श्रीविद्याके उपासक थे । शैवाचार्य अभिनवगुप्त प्रभृति भी शिवोपासनाके साथ श्रीविद्योपासना किया करते थे । आज भी यह सम्प्रदायक्रम म्लानभावसे ही सही परन्तु चल रहा है ।"

भगवान् श्रीकृष्णकी यह कृपामयी उक्ति सुनकर पू0 गुरुदेव समझ गये कि वास्तवमें जीवको भगवान्के स्वरूपतत्वका ज्ञान यथार्थ रूपमें उनकी अघटन–घटना–पटीयसी योगमाया शक्तिकी कृपासे ही संभव है ।

भगवान् श्रीकृष्णका पू0 गुरुदेवको भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी उपासनामें लगानेका एक और अति अन्तरंग प्रयोजन भी था । यद्यपि पू0 गुरुदेवका भगवान्की अति अन्तरंग लीलाओंमें प्रवेश होगया था, परन्तु उन्हें अभी महाभावकी अति उच्च मोहन–मादनादि अवस्थाओंसे परिचय भी नहीं था । फिर इनसे भी उच्चातिउच्च भावावस्थाओंका जिनका रसिकाचार्योंने अपने

रसग्रन्थोंमें उल्लेख ही नहीं किया है, उनका तो उन्हें परिचय भी नहीं था । जिन प्रेम अवस्थाओंकी गन्ध भी पू0 गुरुदेवको नहीं लगी थी, उन अपूर्व अलौकिक स्थितियोंका दान भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें कराना चाहते थे । पू0 गुरुदेव जब इन रहस्योंका बखान करते थे, तब उनके नेत्र प्रेमाश्रुओंसे छलक पड़ते थे । वे बतलाते थे कि –"मैं सोच–सोचकर हार जाता था कि श्रीकृष्णका इतना प्रेम मुझ पर क्यों था, किन्तु इसका कोई हेतु कभी भी मेरी समझमें नहीं आया । मैं तो जानता ही नहीं था कि महाभाव क्या होता है? जब मुझे इन भावोंके ककहरेका भी ज्ञान नहीं था तो उसकी उच्च मोहन, मादनादि अवस्थाओंके ज्ञानका तो प्रश्न ही नहीं था । फिर उनसे भी ऊँची अनुभूतियाँ जिनका शब्द–परिचय भी असंभव मान रसिकाचार्योंने जिनका अपने रसशास्त्रोंमें संकेत तक नहीं किया, उन भावदशाओंकी मैं अथवा कोई भी कल्पना भी किस प्रकार कर पाता । जिन प्रेम–जन्य उच्चातिउच्च अवस्थाओंका मुझे ज्ञान नहीं, परिचय नहीं, उन्हें श्रीकृष्णने स्वेच्छासे मुझे दान किया ।"

वे एक स्वरचित दोहा बोला करते थे –

नियम हुतौ गुन–देहमें महाभाव नहिं हौन ।
मेरे हित पिय साँवरो सोहू कीनौं गौन ।।

अर्थात् – यह नियम था कि प्राकृत त्रिगुणात्मक देहमें महाभावकी उच्च अवस्थाएँ प्रकट नहीं हों, परन्तु मेरे लिये मेरे प्रियतम श्रीकृष्णने इस नियमको भी गौण कर दिया और मुझे इस प्राकृत त्रिगुणात्मक शरीर रखते हुए ही इन उच्चाति उच्च महान् प्रेम–भावोंका अनुभव करा दिया ।"

कहनेका इतना ही तात्पर्य है कि प्राकृत–अप्राकृत लीलाविधातृ महाशक्ति भगवती योगमाया त्रिपुराम्बाकी कृपा एवं उनके "तथास्तु" के बिना पू0 गुरुदेवका मंजुश्यामा भावसे भगवती श्रीराधाके परमोच्च मोहन, मादन भावमें लहराना – जो श्रीकृष्णको अभिप्रेत था, असंभव था । अतः उन्हें इस परमोच्च स्थितिका दान करानेके लिये ही भगवान् श्रीकृष्णने उनसे भगवती आद्याशक्ति योगमाया त्रिपुरसुन्दरीकी उपासना करायी । इस उपासनाके फलस्वरूप ही पू0 गुरुदेवको अक्षय तृतीया सं0 २००८ वि0 के पावन दिन भगवती त्रिपुराके साक्षात् दर्शन हुए और उनमें ऐसी अदम्य शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ जिससे वे दसों हजार व्यक्तियोंको भगवान्‌के साक्षात् दर्शनोंका भविष्यमें विधान सृजन करनेके हेतु हो पाये एवं लगभग पैंतीस सौ लोगोंको अप्राकृत

लीला–राज्यमें प्रवेश करानेका भविष्य निर्माण करनेमें वे हेतु हो गये ।

यहाँ एक बात विचारणीय है कि पू० गुरुदेवके मतमें सृष्टि दो प्रकारकी है । प्रथमतः आत्मार्थ सृष्टि एवं दूसरी जीवार्थ सृष्टि । श्रीमद्भागवतके प्रख्यात टीकाकार श्रीमद्बल्लभाचार्य अपनी सुबोधिनी टीका में कहते हैं –

सा च माया द्विविधा । स्वप्रतिकृत्या सम्बन्धं भगवन्तं जगद्रूपेण करोति, स्वेच्छया प्रादूर्भूतां जीवांश्च व्यामोहयति । तदेवं सृष्टि जीवार्था भवति। अतो मायया इदानींतनाया जीवमायेति नाम ।१।१०।२२।।

प्रथम योगमाया शक्ति जिसे पू० गुरुदेव आत्मार्थ सृष्टि कहा करते थे, अपनी अनन्त प्रतिकृतिका स्पर्श करने पर भगवान्को ही जगद्रूपसे प्रकाशित करती है और दूसरी जीवार्थ सृष्टि, मोहिनी मायाशक्ति जो जीवोंका व्यामोह करके उसे सृष्टिमें आसक्त कर देती है ।

जीवार्थ सृष्टि अविद्यारूपिणी होती है । इसी जीवार्थ सृष्टिमें भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं अथवा सन्तरूपमें अपनी कृपाका प्रकाश करते हैं और जीवोंका कल्याण करते हैं । यह जीवार्थ सृष्टि भगवान्की आत्मार्थ सृष्टिकी अविद्या, मायामें छाया है ।

पू० गुरुदेव इस रहस्यका प्रकाश अपनी "प्रेम–सत्संग–सुधा माला" नामक पुस्तकमें भी करते हैं । वे लिखते हैं कि इस माया–राज्यमें जो भी नदी, वन, पर्वत, झरने, स्त्री–पुरूष, हरिण–गाय, पक्षी, कीट–पतंग, पथ–राजपथ, प्रासाद, गृह, तालाब, सरोवर, वन–उपवन, लताएँ, पुष्प आदि देखते हैं, यह सब भगवान्के अप्राकृत राज्यकी अथवा आत्मार्थ सृष्टिकी अविद्या मायामें छाया है । अप्राकृत राज्यकी छाया इस मायामें पड़ रही है। अब कोई इस विकृत छायाको देखकर अनुमान ही नहीं लगा सकता कि सच्चिन्मय बिम्ब इस छायाका आधार हो सकता है । कुछ ऐसी ही यहाँ–वहाँकी समता है ।

सारांश यही है कि भगवती आद्याशक्ति त्रिपुराकी कृपा प्राप्त कर पू० गुरुदेव अप्राकृत लोकके सर्वोच्च पद भगवती श्रीराधासे अपरोक्ष तादात्म्य लाभ कर सके, साथ ही इस अविद्या राज्यके हम जैसे हजारों नारकीय जीवोंके उद्धारके भी हेतु हो गये ।

अध्याय चौथा

{प्रातः स्मरण}

पू0 गुरुदेव भगवती परमाद्या योगमाया त्रिपुरसुन्दरीकी यह स्तुति अपने उपासना कालमें प्रतिदिन प्रातः किया करते थे । पू0 गुरुदेवने अनेक साधकोंको भी प्रतिदिन यह स्तुति करनेका नियम दिया था । इस भगवती पराम्बाके निम्नलिखित प्रातःस्मरणका तंत्र–जगत्में बहुत ही माहात्म्य है ।

प्रातः स्मरण

प्रातः स्मरामि ललिता वदनारबिन्दं
बिम्बाधरं पृथुलमौक्तिकशोभिनासम् ।
आकर्ण दीर्घ नयनं मणिकुण्डलाढ्यं
मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वलभालदेशम् ।।

भावार्थ

मैं प्रातः {ब्राह्म मुहूर्त्तमें शय्या त्याग करके, भू–प्रार्थनादि, करके, मुख प्रक्षालनके पश्चात्} हे भगवती ललिते ! तेरा स्मरण करता हूँ । अहा ! तेरे पूर्ण विकसित अरविन्दके समान मुख–सरोजकी कैसी निर्मल शोभा है । तेरे लाल–लाल अधर बिम्बफलके सदृश हैं और तेरी सुघड़ नासिकामें अत्यन्त मोटा {पृथुल} मोती जड़ा आभूषण नथ है । तेरे नेत्र कानों तक पहुँचते दीर्घ हैं और कान मणिजटित कुण्डलोंसे सुशोभित हैं । तेरे अधरों पर मन्द मुसकान,शोभायमान हैं और तेरा उज्ज्वल चौड़ा भालदेश कस्तूरीसे चर्चित है ।।१।।

"काव्यार्थ"

मैं प्रातः समय स्मरण करता हूँ, माँ ललिताका वदन–कमल ।
जिनकी नासामें पृथुल सुमुक्ता–युत नथ शोभित शुचि निर्मल ।।
हा ! कैसे निर्मल अरुण अधर मानो द्वय विकसित बिम्ब सुफल ।
आकर्ण विलम्बी दीर्घ नयन करुणा कज्जल युत तीक्ष्ण अमल ।।
कानोंमें शोभित हैं कुण्डल द्युति दमक कपोल रहे झलमल ।
है उन्नत उज्ज्वल भाल तिलक युत चर्चित–मृगमद अति सुविमल ।।
सर्वत्र बिखेर रही हैं शुभ शुचि मंद मधुर मुसकनि निश्छल ।
अति करुणा भरी कर रही हेतुरहित सुप्रीति वर्षा अविरल ।।१।।

{२}

प्रातर्भजामि ललिता भुजकल्पवल्लीं
रक्तांगुलीयलसदंगुलिपल्लवाढ्यम् ।
माणिक्य हेम वलयांगदशोभमानाम्
पुण्ड्रेक्षुचापकुसुमेषु–सृणीर्दधानम् ।। २।।

भावार्थ

हे ललिते महारानी ! मैं प्रातः नित्य तेरी कल्पवल्लरियोंकी शोभा अपहृत करनेवाली भुजाओंका भजन करता हूँ, जिनमें नव पल्लवोंके समान लाल–लाल कोमल अँगुलियाँ हैं और उनमें लाल माणिक्य मणियोंसे जटित लाल अँगूठियाँ आभूषणके रूपमें दमक रही हैं । आपकी भुजाओंमें स्वर्णके वलय एवं अंगद शोभायमान हैं, साथही इन भुजाओंमें स्वर्णिम इक्षु धनुष और कुसुमोंके बाण धृत हैं एवं भ्रमरोंकी प्रत्यंचा लगी है ।।२।।

पद्यभाव {२}

मैं प्रातः भजन करूँ अविरल माँकी द्वय युगल भुजाओंका ।
जो मूलोच्छेदन निरत नित्य मम अति दुष्कर विपदाओंका ।
हैं कल्पवल्लरीसी कोमल पल्लव सम अंगुलियाँ जिनमें ।
शोभित स्वर्णिम माणिक्य जटित अँगुलीयक आभूषण उनमें ।
माणिक्य हेम वलयांगद हैं अतिशय सुगोल वरदायक जो ।
धृत पाशांकुश पुण्ड्रेक्षु चाप कुसुमेषु सृणी शुभदायक सो ।। २।।

{३}

प्रातर्नमामि ललिता चरणारविन्दं भक्त्येशदाननिरतं भवसिन्धुपोतम्
पद्मासनादि सुरनायक पूजनीयं पद्मांकुशध्वज सुदर्शन लाञ्छनाद्यम्

{भावार्थ}

हे मातेश्वरी ललिते ! मैं तेरे विकसित अरविन्दके समान चरणोंका निरे प्रातःकाल नमन करता हूँ । भवसिन्धुको पार करनेके लिये जो जहाज सदृश हैं और अपने भक्तोंका निरन्तर इष्ट सम्पादित करते रहते हैं । जो पद्मासन ब्रह्माजी एवं सुराधिपति इन्द्रके द्वारा नित्य पूजनीय हैं और जिनमें पद्म, अंकुश, ध्वज, एवं सुदर्शन चक्रके चिन्ह शोभा पा रहे हैं ।।३।।

पद्यार्थ

मैं प्रातः नित्य नमन करता माँ तव शुभदायक चरण कमल ।
भक्त्येष्ट दान सुनिरत भव सिन्धु पार करते जो पोत सदृश ।

हैं परमवंद्य सुरनायकके पद्मासन भी हैं नित्य प्रणत ।
पद चिन्ह सुदर्शन चक्र ध्वजा पद्मांकुश जिनमें परिलक्षित ।।३।।

{४}

प्रातस्स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं
त्रय्यन्तवेद्य विभवां करुणानवद्यां ।
विश्वस्य सृष्टि विलय स्थिति हेतुभूतां
विद्येश्वरीं निगम वाङ्मनसातिदूराम् ।।४।।

भावार्थ

हे ललिते ! हे शिवे !! हे भवानी !!! माँ, मैं तेरी प्रातः नित्य स्तुति करता हूँ । तू निराविल करुणाकी मूर्त्ति है । माँ ! तेरा वैभव मात्र वेदान्त वेद्य है, तू ही समस्त सृष्टिकी सृजन, पालन एवं विलय क्रियाकी एक मात्र कारण है । हे समस्त विद्याओंकी ईश्वरी श्रीविद्ये ! तू इन्द्रिय, मन एवं वाणीसे अगोचर है । समस्त श्रुतियाँ अपनेको तेरे गुण वर्णनमें अक्षम समझ शान्त एवं मौन हैं ।

पद्यार्थ {४}

मैं प्रातः नित्य स्तवन करता परशिवा, भवानी ललिताका ।
वेदान्त वेद्य पर–विभवाका करुणा–प्रतिमा अनवद्याका ।।
जो विलय–सृजन संपालनकी हैं एक मात्र कारण भूता ।
सब विद्याओंकी जो जननी श्रुति अगम–निगम वंदिता स्तुता ।।४।।

{५}

प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्य नाम कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति ।।
श्री शाम्भवीति जगतां जननी परेति वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति।५।

भावार्थ

हे माते ! मैं तेरी पावनतम नामावलीका नित्य प्रातः गायन करता हूँ। अहा कैसी कल्याणकारी नामावली है । हे माँ कामेश्वरी ! हे कमले !! हे महेश्वरी !!! हे श्रीविद्ये !!!! हे शाम्भवी !!!!! माँ जगज्जननी ! हे वाग्देवी, हे त्रिपुरेश्वरी करुणामयी तुम्हारी सदा जय हो ।

पद्यार्थ

माँ तव पावनतम नामावलि मैं नित प्रातः गायन करता ।
कहते ही कमले, शिवे जननि मम तन–मनमें अमृत भरता ।।

हे कामेश्वरी, महेश्वरि, शिवे, शाम्भवी श्री वरदायिनि माँ ।
त्रिपुरे वाग्देवी, पराशक्ति तव चरण सिवा गति मुझे कहाँ ? ।।५।।

{६}

यः श्लोक पञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः ।
सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते ।।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना ।
विद्या श्रियं विमल सौख्यमनन्त कीर्तिम् ।।

भावार्थ

जो भी व्यक्ति माँ ललिताम्बाके इन महा सौभाग्यदायी सुललित पाँच श्लोकोंका नित्य प्रातःकाल पाठ करता है उसे भगवती श्रीसुन्दरी शीध्र ही प्रसन्न होकर विद्या, श्री {लक्ष्मी} एवं निर्मल पाप–रहित सुख, साथ ही अनन्त कीर्त्ति दान करती हैं ।

पद्यार्थ

अति सौभाग्यप्रद पाँच श्लोक जो जननीके प्रातः पढ़ता ।
सुर–मुनि–ऋषिवंदित पद पाता नित जननी सन्निधिमें रहता ।।
झटसे प्रसन्न होकर माता उसको देती शुभ कीर्त्ति विमल ।
विद्या, श्री, सुख, अखण्ड जीवन सेवनरत माँके चरण कमल ।।

{७}

प्रातः प्रभृति सायांन्तं सायांदि प्रातरन्ततः ।
यत्करोमि जगद्योने तदस्तु तव पूजनम् ।।
मञ्जु शिञ्जित मञ्जीरं वाममर्धं महेशितु ।
आश्रयामि जगन्मूलं यन्मूलं सचराचरम् ।।७।।

भावाथ

हे पराम्बे ! सम्पूर्ण सृष्टिकी आदि–योनि स्वरूपे !! मैं प्रातःकालसे लेकर सायंकाल तक और सायंकालसे प्रातःकाल तक अष्ट पहरमें जो कुछ भी करता हूँ, वह सब तुझमें ही पर्यवसित है, अतः वह सबकुछ तेरा पूजन ही है । हे माँ ! तेरे अतिशय सुभग मञ्जीर {नूपुर} झंकार कर रहे हैं, तू भगवान् महेश {कामेश्वर} के वामार्ध भागमें सुशोभित है, मैं तेरी, हे जगन्मूले! शरण ग्रहण करता हूँ क्योंकि सचराचरकी तू ही परमाश्रया, परमाधार है ।

अध्याय पाँचवाँ

{भगवती पराम्बाका ध्यान एवं स्तुति}

{प0पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके भगवतीकै, उपासनाके-ध्यानके कुछ अनमोल श्लोक यहाँ दिये जा रहे हैं। उनकी अपनी एक विशेष डायरी थी, जिसमें उनकी विशेष उपासनाकी वस्तुएँ लिखी रहती थीं । लेखकने पू. गुरुदेवसे अनुमति प्राप्तकर पू. गुरुदेवके काष्ठ मौनके पूर्व ये भगवतीके ध्यानके श्लोक उसीमेंसे उतारे थे । यहाँ ये श्लोक पाठकोंके लाभार्थ दिये जारहे हैं । इनके भावार्थ लेखकने स्वयं किये हैं, अतः उसमें यदि कोई त्रुटि विद्वज्जनोंको समझमें आवे तो यह लेखकके अल्प संस्कृत–ज्ञानका परिणाम है । ऐसा अनुमान है कि इनमें एकाध श्लोक भगवान् आदि–शंकराचार्य विरचित 'सौन्दर्य लहरी' नामक भगवतीकी स्तुतिमेंसे है, शेष किस शास्त्रसे उद्धृत हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता । इतना निश्चित है कि उपासकोंके लिये ये ध्यानके अमृतश्लोक बहुत ही उपयोगी हैं ।}

{भगवती पराम्बाका ध्यान}

ध्यायेत् कामेश्वरांकस्थां कुरुविन्दमणिप्रभां
शोणाम्बर स्रगालेपां सर्वांगीण विभूषणाम् ।।
सौन्दर्य शेवधिं सेषू चाप पाशांकुशोज्ज्वलां
स्वभाभिरणिमाद्याभिः सेव्यां सर्वनियामिकाम् ।।

{हिन्दी भावार्थ}

मैं उन सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी, लौकिक अलौकिक सम्पूर्ण लीला–जगतकी एकमात्र नियामिका भगवती जगदम्बाका ध्यान करता हूँ, जो भगवान् कामेश्वरके अंकमें स्थित रहती हैं, जिनके कलेवरसे कुरुविन्द मणिकीसी रक्तिम आभा, लालप्रभा {ज्योत्स्ना} छिटकती रहती है ।

जो अपने ही वर्णके समान लाल वस्त्र धारण करती हैं और जिनके अंग–प्रत्यंग उत्तमोत्तम आभूषणोंसे भूषित हैं, जिनके अनन्त सौन्दर्यकी कहीं सीमा {अवधि} ही नहीं है जो अपनी चारों भुजाओंमें क्रमशः इक्षुका चाप, पुष्पोंके बाण, उज्ज्वल आभासे झलमलाता अंकुश और पाश धारण किये हैं। जिनकी अंग–प्रभा {प्रकाश}से अणिमा–महिमादि अष्ट सिद्धियाँ प्रकट होकर सेवारत रहती हैं, उन सर्व–सेव्या माँका मै ध्यान करता हूँ ।

{२}

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परम शिव पर्यंकनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीं ।।

{भावार्थ}

मैं परमातिपरम धन्या चिदानन्दलहरी {सच्चिदानन्दमयी} माँ ! तेरा भजन करता हूँ, तू अमृत–समुद्रके मध्य स्थित मणिद्वीपमें वृक्षोंकी वाटिकासे घिरे कदम्ब-कल्पवृक्षोंके उपवनमें चिन्तामणियोंसे निर्मित गृहमें शिवाकार मञ्चके ऊपर परम शिवके पर्यंकमें आसीन है ।

{३}

ध्यायेन्निरामयं वस्तु जगत्रयविमोहिनीं
अशेष व्यवहाराणां स्वामिनीं संविदं पराम् ।
उद्यत् सूर्य सहस्राभां दाडिमी कुसुमप्रभां
जपाकुसुम संकाशां पद्मराग मणि प्रभाम् ।।

{भावार्थ}

मैं उस निरामय {शोक, दुःख, व्याधि रहित} वस्तुका ध्यान करता हूँ जो तीनों लोकों {ऊर्ध्व, मध्य एवं अधःस्थित}को मोहित करने वाली हैं । जो पराचिति {संवित्} स्वरूपा हैं और विश्वके समस्त लीला–उपक्रमों {व्यवहार}की एकछत्र स्वामिनी विधाता हैं । सद्योदित सहस्रों बाल सूर्योंके समान रक्तवर्ण जैसी जिनकी आभा है और जो जपापुष्प एवं दाड़िम कुसुमोंके रंगवाली हैं, पद्मराग मणिकी सी ज्योतिर्मान हैं ।

{४}

स्फुरत्पद्मनिभां तप्तकाञ्चनाभां सुरेश्वरीं
रक्तोत्पलदलाकारां पादपल्लव राजिताम् ।
अनर्घ रत्नखचित मञ्जीरचरणद्वयाम्
पादांगुलीयकक्षिप्त रत्नतेजोविराजिताम् ।।

{भावार्थ}

जो समस्त सुरमण्डलकी ईश्वरी हैं, जिनकी आभा तपाये हुए स्वर्णके सदृश है एवं जिनके विकसित कमलके समान कोमल एवं सुन्दर अथवा लाल–लाल सुकोमल नवपल्लवोंके समान चरण हैं । दोनों चरणोंमें अनमोल

रत्न–खचित मंजीर आभूषण हैं, चरणोंकी अंगुलियोंमें जो रत्न जड़े हैं, उनसे तेजस्वी प्रभा निकल रही है ।

{५}

कदली–ललित–स्तंभ सुकुमारोरु कोमलां
नितम्ब–बिम्ब–विलसद्रक्तवस्त्र परिष्कृतां ।
मेखलाबद्ध माणिक्य–किंकिणी–नाद–विभ्रमां ।
अलक्ष्य मध्यमां निम्न नाभिं शातोदरीं पराम् ।।

{भावार्थ}

जैसे कदली वृक्षके स्तंभ खड़े हों ऐसी सुकुमार जिनकी जंघाएँ हैं । बिम्बफलके समान लाल–लाल रंगके वस्त्रोंसे आवृत जिनके नितम्ब हैं । माणिक्यकी मेखला {करधनी}में लगे घुंघुरुओंके किंकण नादसे वे सर्वलोकोंको विभ्रमित कर रही हैं । जिनकी गंभीर नाभि है, ऐसे लघु उदर वाली, अलक्ष्य–मध्यमा परादेवीका मैं ध्यान करता हूँ ।

{६}

रोमराजिलतोद्भूत महाकुचफलान्वितां ।
सुवृत्त निविड़ोत्तुंग कुचमण्डल राजितां ।।
अनर्घ मौक्तिकस्फारहारभार विराजितां ।
नवरत्नप्रभाराजत् ग्रैवेयक विभूषणां ।।
श्रुतिभूषा मनोरम्य कपोलस्थल मंजुलां ।
उद्यदादित्य संकाश ताटंकसुमुख प्रभां ।।

{भावार्थ}

जिनकी रोमावली रूप लतामें दो बड़े–बड़े कुच {स्तन} रूपी फल लगे हों– इस प्रकार सुवृत्त {गोलाकार}, घने एवं ऊँचे उठे हुए स्तन मंडलसे जो शोभायमान हैं । उनकी ग्रीवामें परम निर्मल मुक्ताहारोंका भार है साथ ही ग्रैवेयक आभूषणमें जटित नौ प्रकारके रत्नोंकी प्रभा बिखर रही है । कानोंके आभूषण परम मनोरम हैं, जो कपोलोंकी शोभाको मंजुल बना रहे हैं एवं जैसे बाल–रवि उदय हुआ हो, ऐसी प्रभा उनके कुण्डलोंसे निकल रही है।

{७}

पूर्णचन्द्रमुखीं पद्मवदनां वरनासिकां
स्फुरन्मदनकोदण्ड सुभ्रुवं पद्मलोचनां ।।

ललाट पट्ट संराजद्रत्नाढ्य तिलकांकितां ।
मुक्तामाणिक्य घटित मुकुटस्थल किंकिणीम् ।।
{भावार्थ}

पूर्ण राकाचन्द्रके समान मुखवाली माँ जिनका आनन खिले पद्मके समान शोभायुक्त है एवं जिनकी श्रेष्ठ नासिका है, जिनकी सुन्दर भौंहें कामदेवके धनुषके समान धीरे–धीरे संचारित हो रही हैं, जिनके ललाट स्थलमें बहुमूल्य श्रेष्ठ रत्नका तिलक अंकित हुआ शोभा पा रहा है एवं मुकुटमें मुक्ता एवं माणिक्यकी लड़ें किंकिणीकी तरह शोभित हैं ।

{८}

स्फुरच्चन्द्रकलाराजन्मुकुटां च त्रिलोचनां ।
प्रवालवल्लीविलसद्बाहुवल्ली चतुष्टयाम् ।।
इक्षुकोदण्डपुष्पेषु पाशांकुश चतुर्भुजां ।
सर्वदेवमयीमम्बां सर्व–सौभाग्य–सुन्दरीम् ।।

{भावार्थ}

त्रिनयना माँके मुकुटमें चन्द्रकला विराजित है । उनकी चारों भुजाओंकी ऐसी शोभा है मानों प्रवाल मणियोंकी लताएँ हों । वे चारों भुजाओंमें इक्षुका धनुष, पुष्पोंके बाण, पाश तथा अंकुश धारण किये हैं, वे श्रीसुन्दरी अम्बा सर्वदेवमयी हैं एवं सर्वसौभाग्यदात्री हैं ।

{९}

सर्वतीर्थमयीं दिव्यां सर्वकामप्रपूरिणीं ।
सर्वमंत्रमयीं नित्यां सर्वागमविशारदां ।।
सर्वक्षेत्रमयीं देवीं सर्वविद्यामयीं शिवां ।
सर्वयागमयीं विद्यां सर्वदेवस्वरूपिणीम् ।।

{भावार्थ}

हे माता ! आप सर्व तीर्थमयी हैं, आप परम दिव्य स्वरूपा हो, सब कामनाओंको पूर्ण करदेनेवाली हो, सर्व मन्त्रमयी हो, सनातनी नित्या हो, सारे आगम शास्त्रोंकी विशारद हो, सर्व क्षेत्रमयी भगवती धरा आपका ही स्वरूप है और सर्व विद्यामयी शिवा भी आप ही हो । आप सर्व यज्ञमयी हैं एवं सर्व देवस्वरूपिणी महाविद्या भी आप ही हो ।

{१०}

सर्वशास्त्रमयीं नित्यां सर्वागमनमस्कृतां ।
सर्वाम्नायमयीं देवीं सर्वायतन-सेवितां ।।
सर्वानन्दमयीं ज्ञानगह्वरां संविदं परां ।
एवं ध्यायेत् परामम्बां सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।।

{भावार्थ}

माता ! आप सर्वशास्त्रमयी हो, आप शाश्वत, नित्य एवं सनातन हो । सारे आगम आपकी स्तुति करते हैं । आप उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, ऊर्ध्व, अधः सर्वआम्नायमयी हो । सम्पूर्ण प्रयत्नोंसे मात्र आपका भजन करना ही जीवमात्रका कर्त्तव्य है । सर्व-आयतनों {मन्दिरों}में आपकी ही सेव्य मूर्त्तियाँ हैं, जहाँ आपकी ही पूजा-सेवा हो रही है । आप सर्वानन्दमयी हैं । आप ज्ञानाग्निकी कुण्ड हैं एवं परा-संविद् {बोधस्वरूप चेतन सत्ता} स्वरूपिणी हैं । इस प्रकार उन सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी पराम्बाका नित्य ध्यान करना चाहिये ।

भगवती पराम्बाकी स्तुति

{ये स्तुतिके पद भी पू. गुरुदेवकी डायरीसे उद्धृत हैं। इनमेंसे भी कतिपय पद भगवान् आदि-शंकरस्वामिकृत "सौन्दर्य लहरी" स्तोत्र में से हैं ।}

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्नवदनैः
प्रजानामीशान त्रिपुरमथनः पञ्चभिरपि ।
न षड्भिः सेनानीर्दशशतमुखैरप्यहिपति-
स्तदान्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नवसर ।।१।।

{भावार्थ}

हे माता भवानी ! औरोंकी तो बात ही क्या, अखिल सृष्टिके रचयिता प्रजापति ब्रह्माजी अपने चारों मुखोंसे भी तुम्हारी स्तुति नहीं कर सकते, त्रिपुरहर भगवान् शंकर पाँच मुखके रहते हुए भी इस विषयमें मूक होकर रह जाते हैं । देव-सेनापति भगवान् कार्त्तिकेय छः मुखवाले हैं, परन्तु वे भी मन-मारकर बैठ जाते हैं । इन सबके ऊपर भगवान् शेष हजार मुख रखते हैं, परन्तु वे भी तुम्हारी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं। कोई करे भी तो कैसे, तुम्हारे गुणोंकी थाह पावे, तब न ! फिर मेरे जैसे साधारण जीवकी तो सामर्थ्य ही क्या है ?

{२}

ईशित्व–भाव–कलुषाः कतिनाम सन्ति
ब्रह्मादयः प्रतियुगं प्रलयाभिभूताः ।।
एकः स एव जननी स्थिर सिद्धिरास्ते
यः पादयोस्तव सकृत् प्रणतिं करोति ।।

{भावार्थ}

हे माते ! ईश्वरत्वके भावको कलुषित करनेवाले अनेक ब्रह्मादि देवता हैं, जो अपनेको समझते ईश्वर हैं परन्तु प्रत्येक युगमें प्रलयकाल होने पर नष्ट होजाते हैं । हे माँ ! एक तू ही सबको जन्म देनेवाली है, जिसका अनन्त महाप्रलय भी कुछ भी बाल–बाँका भी नहीं कर सकते, तू माँ, उस महा–प्रलयकी भी साक्षी–द्रष्टा बनी रहती है । माँ ! तेरे चरणोंको मैं सदैव प्रणाम करता हूँ।

{३}

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया ।
भयात् त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ।

{भावार्थ}

हे सर्वशरणदात्री माँ ! तुम्हें छोड़कर जितने दूसरे देवता हैं, सभी अपने हाथोंसे ही अभय–दान करते हैं, वे वरदान भी हाथों द्वारा ही देते हैं। इसीलिये प्रायः सभी वरद अथवा अभय मुद्रा धारण किये रहते ही हैं । तुम्हीं एक ऐसी हो जो इन दोनों मुद्राओंको धारण करनेका स्वाँग नहीं रचतीं । तुम्हें इसकी आवश्यकता भी नहीं । तुम्हारे दोनों चरण ही आश्रितोंको सब भयोंसे मुक्त करने तथा उन्हें इच्छित फलसे अधिक देनेमें समर्थ हैं । तुम्हारे हाथ तो निरन्तर शत्रु–संहारके कार्यमें लगे रहते हैं । भक्तोंके लिये तो तुम्हारे चरण ही पर्याप्त हैं ।

{४}

दृशा द्राधीयस्या दरदलित नीलोत्पलरुचा
दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे ।
अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता
वने वा हर्म्ये वा समकर निपातो हिमकरः ।।

{भावार्थ}

हे शिवे ! अधखिले नील कमलके समान कान्तिवाले अपने विशाल नेत्रोंसे तुम्हारे सुर–मुनि–दुर्लभ चरणोंसे बहुत दूर पड़े हुए मुझ दीन पर भी अपने कृपा–पीयूषकी वर्षा कर दो । तुम्हारे ऐसा करनेसे मैं तो कृतार्थ हो जाऊँगा ही और तुम्हारी कुछ भी क्षति नहीं होगी, क्योंकि तुम्हारा कृपाका भण्डार अटूट, अक्षय है। मुझ पर कुछ छींटे डाल देनेसे उसका दिवाला नहीं निकलने वाला है । माँ ! तुम क्यों नहीं मुझे एक बार ही सदाके लिये निहाल कर दे रही । चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे सभी जगह समान रूपसे अमृतवर्षा करता है। उसकी दृष्टिमें एक वीरान जंगल और राजाधिराजकी गगनचुंबिनी अट्टालिकामें कहीं कोई अन्तर नहीं है । फिर तुम्हीं मुझ दीन पर क्यों नहीं ढरतीं। मुझसे इतना अलगाव क्यों कर रखा है ? क्या इस प्रकारका वैषम्य तुम्हें शोभा देता है? नहीं, नहीं, कदापि नहीं। कृपया शीघ्र मुझे अपनाकर अपने शीतल चरणतलका आश्रय दो । जिससे सदाके लिये मैं तुम्हारा क्रीतदास बन जाऊँ, तुम्हें छोडकर दूसरी ओर कभी भूलकर भी नहीं ताकूँ ।

{५}

ह्रींकारमेव तव नाम गृणन्ति वेदाः मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे
यत्संस्मृतौ यमभटादिभयं विहाय दीव्यन्ति नन्दनवने सह लोकपाल

{भावार्थ}

हे माते ! चारों वेद तेरे ह्रींकार नामकी महिमा गाते हैं । हे त्रिनयने, त्रिपुरे, जगज्जननी तू त्रिकोणमें निवास करती है । तेरे स्मरण करने मात्रसे यमके शूरवीर दूत भयसे भाग जाते हैं और जीवोंके सम्मुख लोकपाल देवताओंके साथ नन्दनवन स्वर्ग प्रकाशित हो उठता है ।

{६}

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्रा विरचनं
गतिः प्रादक्षिण्यक्रमण मदनाद्याहुति विधिः ।
प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा
सपर्या पर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितुम् ।।

{भावार्थ}

हे माते ! जब मैं हूँ ही नहीं, मात्र तू ही तू है तो मेरा हिलना–चलना, विलसना सभी तेरी जप–मुद्रा है एवं खाना–पीना सब मात्र तेरी सपर्याका

पयार्य ही तो है । मेरा भाषण, बोलना तेरा जप एवं गुण–कीर्त्तन है । मेरी सब अंग–प्रत्यंगसे सेवाके लिये की गई शरीर क्रिया तुम्हारी पूजाके लिये करणीय मुद्रायें हैं । माँ ! तेरी सेवाके लिये मेरा गमनागमन तेरी प्रदक्षिणा करना ही है। तेरी नैवेद्य वस्तुओंको खाना, खाद्य–पेय–लेह्य–चोष्यादि भोजन, आहुति विधिसे हवनमें आहुति दिया जाना है । मेरा शयन तेरे चरणोंमें प्रणाम है । इस प्रकार मेरा सम्पूर्ण सुख सर्वानन्द–घन तुभमें मेरा समर्पण ही है ।

{७}

ह्रींकार त्रय संपुटेन महता मन्त्रेण सन्दीपितं
स्तोत्रं यः प्रतिवासरं तव पुरो मातर्जपेन्मन्त्रवित् ।।
तस्य क्षोणिभुजो भवन्ति वशगाः लक्ष्मीश्चिरःस्थायिनी
वाणी निर्मल सूक्तिभारभरिता जागर्त्ति दीर्घं वयः ।।

{भावार्थ}

हे माते ! जो भी मंत्रवेत्ता व्यक्ति प्रति दिवस इस स्तोत्रको जिसमें तीन बार "ह्रीं" मन्त्र सम्पुटित है एवं भगवतीके मंत्रसे दैदीप्यमान है, तेरे सम्मुख जप {पाठ} करता है, उसके समस्त पृथ्वीके सम्राट् वशवर्त्ती हो जाते हैं एवं उसके यहाँ भगवती लक्ष्मी चिरस्थायिनी होकर निवास करती हैं, उसकी वाणी परम निर्मल एवं विशिष्ट ऋषियोंकी उक्तियोंसे सम्पन्न होजाती है और वह दीर्घ आयुको भोगता हुआ जीवित रहता है ।

{८}

निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती
तवेत्याहुः सन्तो धरणिधर राजन्य तनये ।
तदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः
परित्रातुं शंके परिहृतनिमेषा स्तव दृशः ।।

{भावार्थ}

हे शैलेन्द्रतनये ! शास्त्र एवं सन्त यह कहते हैं कि तुम्हारे पलक मारते ही यह संसार प्रलयके गर्भमें लीन हो जाता है और पलक खोलते ही वह फिरसे प्रकट हो जाता है । संसारको बनाना तथा बिगाड़ना तुम्हारे लिये एक पलकका खेल है । तुम्हारे मात्र पलक उघाड़नेसे जो यह संसार खड़ा होगया है, वह पुनः नष्ट नहीं हो जाय, प्रतीत होता है, इसीलिये तुम कभी

पलक गिराती नहीं, सदा निर्निमेष दृष्टिसे अपने भक्तोंकी ओर निहारती ही रहती हो ।

{९}

घृत द्राक्षाक्षीर मधु मधुरिमा कैरपि पदै
विशिष्यानाख्येयो भवति रसना मात्र विषयः ।
तथा ते सौन्दर्य परम शिव दृङ्मात्र विषयः
कथंकारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे ।।

{भावार्थ}

हे माता ! घी, दूध, दाख अथवा शहदका स्वाद कैसा है, उनके स्वादमें क्या–क्या अन्तर है – इसे शब्दोंके द्वारा पृथक्–पृथक् करके किसी प्रकार भी नहीं समझाया जा सकता । इसका सही ज्ञान तो केवल रसनाका ही विषय है । इसी प्रकार हे देवि, तुम्हारी अनुपम छवि का कोई वर्णन नहीं कर सकता, वह तो केवल परमशिवके प्रत्यक्षका ही विषय है । सौन्दर्यकी तो बात ही क्या, तुम्हारे और–और गुणोंका भी कोई वर्णन नहीं कर सकता। वेद और उपनिषत् भी हार मान जाते हैं और "नेति" नेति कहकर ही अपना पिण्ड छुड़ाते हैं ।

{१०}

कृपापांगालोकं वितर तरसा साधुचरिते
न ते युक्तोपेक्षा मयि शरणदीक्षामुपगते ।
न चेदिष्टं दद्यादनुपदमहो कल्पलतिका
विशेषः सामान्यैः कथमितरवल्ली परिकरैः ।।

{भावार्थ}

हे देवि ! मुझ शरणागत पर शीघ्र ही अपने कृपा–कटाक्षका निक्षेपकर मुझे कृतकृत्य करो । माना कि मेरे आचरण साधुओंके से नहीं हैं, किन्तु मैं तेरी शरणमें तो चला ही आया हूँ । क्या शरणमें आये हुएकी तुम्हें उपेक्षा करनी चाहिये? यदि शरणमें चले आने पर भी तुम यह विचार करोगी कि इसके आचरण उत्तम हैं या नहीं और मुझ–जैसे मन्द आचरण वालोंसे बेरुखीका व्यवहार करोगी तो फिर तुममें और दूसरे देवताओंमें अन्तर ही क्या रहा ? कल्पवृक्षके नीचे चले आने पर भी यदि किसीकी इच्छा पूरी नहीं हो तो फिर उसमें और साधारण वृक्षोंमें अन्तर ही क्या रहा ? कल्पवृक्षका धर्म ही है अर्थार्थीकी कामनाको पूर्ण करना । फिर तुम अपने धर्मको कैसे

छोड़ सकती हो? तुम्हें अपने बिरदकी रक्षाके लिये ही मेरी बाँह पकड़नी होगी, मुझे अपनी शरणमें लेना होगा । यदि मेरा परित्याग करती हो तो साथ–ही–साथ अपनी शरणागतवत्सलताका बाना भी छोड़ना होगा ।

{११}

अयःस्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
यथारथ्यापाथः शुचि भवति गंगौघमिलितम् ।
तथा तत्तत्पापैरतिमलिनमन्तर्मम यदि
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम् ।।

{भावार्थ}

हे माते ! पारसमणिका स्पर्श पाते ही लोहा तत्काल सोना बन जाता है और नालेका गन्दा पानी भी जगत्पावनी गंगाजीकी धारामें मिलकर स्वयं जगत्पावन हो जाता है । फिर अनेक प्रकारके पापोंसे कलुषित हुआ मेरा मन क्या तुम्हारे प्रेमको प्राप्त करके भी निर्मल नहीं होगा ?

{१२}

त्वदन्यस्मादिच्छा विषय–फल–लाभे न नियम
स्त्वमज्ञानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरणे ।
इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन
स्त्वदासक्तं नक्तन्दिवमुचितमीशानि कुरु तत् ।।

{भावार्थ}

तुम्हारे अतिरिक्त जो दूसरे देवता हैं, उनके द्वारा उनके उपासकोंको इच्छित फलकी प्राप्ति हो ही, ऐसा नियम नहीं है । क्योंकि प्रथम तो वे सर्वसमर्थ नहीं हैं, वे अपनी–अपनी शक्तिके अनुसार ही अपने उपासकोंकी इच्छाको पूर्ण कर सकते हैं । अपनी सामर्थ्यसे अधिक वे नहीं दे सकते । फिर जो कुछ भी वे देते हैं, उसके लिये मूल्य भी पूरा–पूरा वसूल करते हैं। मूल्य पूरा अदा नहीं करनेसे अथवा साधनमें किसी प्रकारकी त्रुटि रह जाने पर अथवा विधिमें वैगुण्य होनेसे वे इच्छित फल सामर्थ्य होने पर भी, नहीं देते । माँ ! तुम्हारी बात तो कुछ दूसरी ही है। तुम तो अपने भक्तोंको उनकी इच्छासे अधिक भी दे सकती हो ।

बात यह है कि हम अल्पज्ञ जीव तुम्हारी अतुल सामर्थ्यको न जानकर तुमसे बहुत ही छोटी–छोटी चीजें माँग बैठते हैं । तुम तो इतनी दयालु हो कि हमें आशातीत फल प्रदान करती हो और देवता तो हमारी सांसारिक

इच्छाओंकी पूर्तिको अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझ लेते हैं । तुम हमारी सांसारिक कामनाओंको भी पूर्ण करती हो, साथ–ही–साथ अपनी विमल भक्ति भी देती हो । ब्रह्मादिक पूर्वजोंने तुममें और अन्य देवताओंमें यही अन्तर् बतलाया है । इसीलिये मेरा मन रातदिन तुम्हारा ही चिन्तन करता है ।

हे परमेश्वरि ! अब जैसा उचित समझो करो । मैं तो तुम्हारी शरणमें पड़ा हूँ । मुझ–जैसे अधमोंका अब और कहाँ ठौर ठिकाना है ? आश्रयहीनको आश्रय देनेवाली तुमसे बढ़कर अब किसको कहाँ पाऊँगा ?

{१३}

पिता माता भ्राता गुरुरथ सुहृद्बान्धव जनः
प्रभुस्तीर्थं कर्माविकलमिह चामुत्र च हितं ।
विशुद्धा विद्या वा पदमपि च तत्प्राप्यमसि मे
त्वमेव श्रीमातः स्वपिमि गतशंकः सुखतमः ।।

{भावार्थ}

हे मेरी माँ ! तू ही मेरी पिता है, माता है, भ्राता, गुरु, सुहृद् एवं बन्धुजन तू ही है । तू ही मेरी प्रभु {ईश्वर}, तीर्थ, इस संसारके अविकल कर्म है एवं तू ही मेरा हित है । मेरी विशुद्ध विद्या, मेरा प्राप्तब्य पद भी तू ही है । माँ ! एक तू ही है जिसकी गोदमें मैं परम सुखसे सब शंकाओंसे परे हुआ विश्राम कर सकता हूँ, शयन कर सकता हूँ ।

{१४}

हे सद्रूपिणि हे चिदर्चिरुचये हे कामराजप्रिये
हे भण्डासुरहन्त्रि हेऽद्भुतनिधे हेऽनंगसंजीवनी ।
हे विश्वप्रसविनी हे सकरुणे हे दीन रक्षामणे
हे श्रीमल्ललिताम्ब हे परशिवे मां पाहि डिम्भं जनम् ।।

{भावार्थ}

हे सत्स्वरूपिणी माँ ! तेरी शोभा ऐसी है मानो चैतन्य अग्निदेवकी तेजोराशि हो, हे कामेश्वर भगवान्‌की प्रिये, हे भण्डासुरका वध करनेवाली, हे परमाद्भुत लक्ष्मीस्वरूपे, हे कामदेवको जीवनदान देनेवाली, हे सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाली, हे करुणापूर्णे, हे दीनजनोंकी रक्षा करनेवाली महा सामर्थ्यवान् मणि, हे समग्र श्रीस्वरूपे माँ ललिते, हे परशिवे, मुझ अपने मूर्ख बालककी रक्षा करो ।

{१५}

नमो हेमाद्रिस्थे शिव सति नमः श्रीपुरगते
नमः पद्माटव्यां कुतुकिनि नमो रत्नगृहगे ।
नमः श्रीचक्रस्थेऽखिलमयि नमो बिन्दुनिलये
नमः कामांकस्थितिमति नमस्तेऽम्ब ललिते ।।

{भावार्थ}

हे माता ! तू सुमेरु पर्वतके स्वर्ण शिखर पर वास करती है, तुझे मेरा नमस्कार है । हे श्रीपुरमें निवास करनेवाली शिव–सती, आपको मेरा नमन है। हे पद्माटवीमें रसविलास–कौतुक करती, चिन्तामणि रूप रत्नभवनमें निवास करनेवाली माँ, तुझे मेरा नमन है । हे श्रीचक्रराजमें स्थित अखिल सृष्टिमयी, हे बिन्दुनिलये, हे कामेश्वरअंकस्थिते, विद्यास्वरूपिणी, अम्बे, ललिते, तुझे मेरा नमस्कार है ।

{१६}

जय जय जगदम्ब भक्तवश्ये
जय जय सान्द्रकृपावशान्तरंगे ।
जय जय निखिलार्थ दानशौण्डे
जय जय हे ललिताम्ब चित्सुखाब्धे ।।

{भावार्थ}

हे जगदम्बे ! निज भक्तोंके वशमें रहनेवाली, तेरी जय हो ! हे घनीभूत कृपाके वशमें रहनेवाली, परम समीप रहनेवाली, आत्मस्वरूपे– तेरी जय जय हो, हे सम्पूर्ण सौभाग्य–दान करनेवाली, तुम्हारी जय जय हो, हे चित्सुखकी अगाध उदधि तेरी जय–जय, परम जय हो । हे माँ ललिते ! तेरी जय हो।

{१७}

भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम् ।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं शिवे ।

{भावार्थ}

हे शिवे ! भूमिमें यदि किसीका पैर स्खलित हो जाये तो वह गिरकर भूमिमें ही पड़ेगा, उसका भूमिके अतिरिक्त अन्य अवलम्बन तो संभव ही नहीं। इसी प्रकार हे माँ शिवे ! तेरे प्रति अपराधोंकी मुक्ति मात्र तेरी ही शरणागतिसे संभव है । अन्य उपाय तो संभव ही नहीं ।

अध्याय छठा

{श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी–मानस–पूजा–स्तोत्रम्}

{पाठकोंके मनमें स्वाभाविक ही जिज्ञासा हो सकती है कि पू0 गुरुदेव श्रीराधाबाबा भगवती महात्रिपुरसुन्दरीकी उपासना किस विधिसे किया करते थे ? पू0 गुरुदेव चतुर्थाश्रमी सन्यासी होनेके नाते क्रियात्मक पूजा पद्धतिका अवलंबन साधनोंके अभाववश ले नहीं सकते थे, अतः वे नित्य चार बार माँ आद्याशक्तिकी मानस–पूजा किया करते थे । यहाँ नीचे अर्थ–सहित वे शताधिक श्लोक भावार्थसहित दिये जा रहे हैं जो भगवान् आदिशंकर स्वामी द्वारा विरचित हैं और इन्हीं श्लोकोंसे पू0 गुरुदेव राधाबाबा की सम्पूर्ण पूजा पुष्पार्चनसे सम्पादित होती थी ।}

मम न भजनशक्तिः पादयोस्ते न भक्तिः
न च विषयविरक्तिर्ध्यानयोगे न सक्तिः ।
इति मनसि सदाऽहं चिन्तयन्नाद्यशक्ते
रुचिरवचनपुष्पैरर्चनं सञ्चिनोमि ।।१।।

हे आद्याशक्ते ! मुझमें न तो तेरा भजन करने योग्य सात्त्विक बल है, न ही तेरे चरणोंमें इस प्रकारकी तीव्र भक्ति ही है, जिसके प्रतापसे वह सात्त्विकबल उपलब्ध हो जाये, न ही मेरे हृदयमें विषयोंसे पूर्णतया विरक्ति ही हुई है, अतः विरक्ति नहीं होनेसे मेरा विषयासक्त मन चंचल रहता है और इसीलिये ध्यानयोगमें मनकी रुचि ही नहीं होती, इन सभी असमर्थताओंको अपने भीतर पाते हुए मैंने मनमें निरन्तर विचार करके यही निर्णय लिया है कि मैं आपका अर्चन अपनी वाणीके पुष्पोंसे ही सम्पन्न करूँ ।

{मणिद्वीपके महाकाशका अर्चन}

व्याप्तं हाटकविग्रहैर्जलधरैरारूढदेवव्रजैः
पोतैराकुलितान्तरं मणिधरैर्भूमीधरैर्भूषितम् ।
आरक्तामृतसिन्धुमुद्धुरचलद्वीचीचलव्याकुल
व्योमानं परिचिन्त्य सन्ततमहो चेतः कृतार्थीभव ।।२।।

{भावार्थ}

जिसमें स्वर्णमूर्त्तियोंके समान शोभा ग्रहण करनेवाले बादल घिरे हैं और इन बादलोंको अपना वाहन बनाकर उनमें देववृन्द आरूढ़ हैं, इन

बादलोंके नीचे रक्तिम वर्णवाला अमृतसिन्धु उत्ताल तरंगें लेता लहरा रहा है, इस समुद्रकी लहरोंके आघातसे, आकुल हृदय जहाजकी तरह, अनन्त बहुमूल्य अलौकिक मणियोंसे आच्छादित भूमि एवं उन्नत शिखर पहाड़ोंसे युक्त मणिद्वीप नामक भगवती का श्रीधाम है – अहा मेरा चित्त इस परम चिन्मय महाकाशको देखकर परम कृतकृत्यता लाभ कर रहा है ।

{मणिद्वीपको नमस्कार}

तस्मिन्नुज्ज्वलरत्नजालविलसत्कान्तिच्छटाभिः स्फुटं
कुर्वाणं वियदिन्द्रचापनिचयैराच्छादितं सर्वतः ।
उच्चैःशृंगनिषण्णदिव्यवनितावृन्दाननप्रोल्लसद्
गीताकर्षणनिश्चलाखिलमृगं द्वीपं नमस्कुर्महे ।।३।।

{भावार्थ}

इस द्वीपमें सर्वत्र दैदीप्यमान अलौकिक रत्नोंकी कान्तिसे चतुर्दिक् शोभाका स्फोट हो रहा है, ऐसा अनुभव होता है, मानों सर्वत्र आकाशके इन्द्रधनुषोंके समूहोंने इस पृथ्वीको आच्छादित कर लिया हो, पहाड़ोंकी ऊँची चोटियोंमें आसीन भगवतीकी दिव्य सेविकाओं – स्त्री समूहोंकी मुख शोभासे यह द्वीप नित्य उल्लसित है। उनके गायनके आकर्षणसे इस द्वीपमें विचरण करते मृग एकटक ऊर्ध्व कर्ण किये निश्चल हैं, ऐसे भगवती पराम्बाके श्रीद्वीपको मैं नमस्कार करता हूँ ।

जातीचम्पकपाटलादिसुमनस्सौरभ्यसम्भावितं
ह्रींकारध्वनिकण्ठकोकिलकुहूप्रोल्लासिचूतद्रुमम् ।
आविर्भूतसुगन्धिचन्दनवनं दृष्टिप्रियं नन्दनम्
चञ्चच्चञ्चलचञ्चरीकचटुलं चेतश्चिरं चिन्तय ।।४।।

{भावार्थ}

जहाँ जाती, चम्पक एवं पाटल पुष्पोंकी सुरभि सर्वत्र सम्यक् रूपसे व्याप्त है, आम्रवृक्षोंमें आसीन कोकिलायें अत्यन्त उल्लसित हुई ह्रींकार स्वरमें कुहक रही हैं । सर्वत्र मानो चन्दनवनकी सी सुगन्ध व्याप्त है और दृष्य ऐसा मनोहर है मानो नन्दनवन हो । चतुर्दिक् चंचल भ्रमरोंका चटुल निनाद हो रहा है । हे मेरे चित्त, तू अनन्तकाल तक इस भगवतीके मणिद्वीप श्रीधामके चिन्तनमें रमा रह ।

{कल्पोद्यानराज वर्णन}

परिपतितपरागैः पाटलक्षोणिभागो
विकसितकुसुमोच्चैः पीतचन्द्रार्करश्मिः
अलिशुकपिकराजीकूजितैः श्रोत्रहारी
स्फुरतु हृदि मदीये नूनमुद्यानराजः ॥५॥

{भावार्थ}

जहाँ सर्वत्र पुष्पोंका पराग परिपूरित है, भूमिभाग पाटल पुष्पके वर्णका है, जहाँ सर्वत्र ऊँची–ऊँची कुसुम लताओंमेंसे सूर्यकी किरणें चन्द्रमाके तुल्य पीले रंगकी प्रतीत हो रही हैं, जहाँ भ्रमर, शुक एवं कोकिलाओंके समूह श्रवणोंको मोहित करनेवाली ध्वनिमें कूजन कर रहे हैं उस भगवती पराम्बाका महामहिम वह उद्यानराज मेरे हृदयमें स्फुरित होवे ।

{कनक प्राकार वर्णन}

रम्यद्वारपुरप्रचारतमसां संहारकारिप्रभ–
स्फूर्जत्तोरणभारहारकमहाविस्तारहारद्युते ।
क्षोणीमण्डलहेमहारविलसत्संसारपारप्रद–
प्रोद्यद्भक्तमनोविहारकनकप्राकार तुभ्यं नमः ॥६॥

{भावार्थ}

जिस प्राचीरमें अतिरमणीय बड़े–बड़े कपाटयुक्त द्वार हैं, जो श्रीपुरमें व्याप्त रात्रिगत तमके संहारार्थ प्रभा बिखेर रहे हैं । प्राकारमें बन्दनवारें बँधी हैं, इन हारोंसे सुशोभित स्वर्णिम बन्दनवारोंकी द्युतिके सम्मुख प्राकारका विस्तार लघु हो जाता है । यह प्राचीर यहाँ मणिद्वीपके भूमिमण्डलके चतुर्दिक् मानो हेम–हार पहनाया गया हो, इस प्रकार प्रतीत होता है और संसारके पार पहुँचानेवाला मोक्ष–प्रदाता है । जो प्राचीर देवी भक्तोंके मनोविहारके लिये सदा उद्यत रहता है, ऐसे प्राचीरको हमारा नमस्कार है ।

{श्री मण्डप वर्णन}

उद्यत्कान्तिकलापकल्पितनभःस्फूर्जद्वितानप्रभः
सत्कृष्णागरुधूपवासितवियत्काष्ठान्तरे विद्युतः ।
सेवायातसमस्तदैवतगणैरासेव्यमानोऽनिशम्
सोऽयं श्रीमणिमण्डपोऽनवरतं मच्चेतसि द्योतताम् ॥७॥

{भावार्थ}

मानो उदय होते हुए सूर्यकी कान्ति–कलाप से सम्पूर्ण नभ भर गया

हो, इस प्रकार जिस मण्डपके चन्दौवेकी प्रभा छिटक रही है, जिसका आकाश कृष्णागरु एवं धूपसे सुवासित है एवं जिसके सभी काष्ठ ऐसे दैदीप्यमान हैं, मानो विद्युत् इनके भीतरसे चमक रही हो । जो निरन्तर दिन–रात सेवातत्पर सम्पूर्ण देवतागणों द्वारा सेव्य है, ऐसा भगवती त्रिपुरादेवीका महामहिमामय मंडप अनवरत मेरे चित्तमें प्रकाशित हो ।

{मणि मन्दिर वर्णन}

क्वाऽपि प्रोद्भटपद्मरागकिरणव्रातेन सन्ध्यायितं
कुत्राऽपि स्फुटविस्फुरन्मरकतद्युत्या तमिस्रायितं ।
मध्यालम्बिविशालमौक्तिकरुचा ज्योत्स्नायितं कुत्रचित्
मातः श्रीमणिमन्दिरं तव सदा वन्दामहे सुन्दरम् ।।८।।

{भावार्थ}

हे माँ, मैं तेरे परम सुन्दर मणिमन्दिरकी सदा वन्दना करता हूँ, जहाँ कहीं तो विशाल एवं अतिश्रेष्ठ पद्मराग मणियोंकी ज्योत्स्नाके कारण अरुण सन्ध्याकाल हो गया हो, ऐसा प्रतीत होता है एवं कहीं–कहीं मरकत मणियोंकी कृष्णद्युतिसे अन्धकारसा प्रतीत होता है, मध्यमें विशाल मुक्तामणियोंकी मौक्तिक ज्योत्स्ना छिटकती दीखरही है ।

मणिसदनसमुद्यत्कान्तिधारानुरक्ते
वियति चरमसंध्याशंकिनो भानुरथ्याः ।
शिथिलितगतकुप्यत्सूतहुंकारनादैः
कथमपि मणिगेहादुच्चकैरुच्चलन्ति ॥९।।

{भावार्थ}

मणिसदनसे उठी हुई लालरंगकी कान्ति–धाराको आकाशमें देखकर सूर्यके घोड़ोंको सन्ध्या हो जानेका भ्रम हो जाता है, वे अपनी गतिको शिथिलकर देते हैं, जिससे कुपित होकर सूत हुंकार करने लगता है, तब वे अश्व मणिगेहको किसी प्रकार ऊपरसे फाँद कर पार करके तब अपनी चालमें आते हैं ।

विदूरमुक्तवाहनैर्विनम्रमौलिमण्डलै–
र्निबद्धहस्तसम्पुटैः प्रयत्नसंयतेन्द्रियैः।
विरिञ्चविष्णुशंकरादिभिर्मुदा तवाम्बिके
प्रतीक्षमाणनिर्गमो विभाति रत्नमण्डपः ।।१०।।

{भावार्थ}

अपने वाहनोंको दूरतः ही छोड़कर, अत्यन्त विनम्र भावसे अपने मस्तकोंको झुका कर, दोनों हाथोंको जोड़कर प्रयत्नपूर्वक अपनी सभी इन्द्रियोंको संयतकर ब्रह्मा, विष्णु, शंकरादि, हे माँ ! तेरे आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए अति प्रसन्न मुद्रामें जहाँ स्थित हैं, ऐसे तेरे रत्नमण्डपकी शोभा है।

ध्वनन्मृदंगकाहलः प्रगीतकिन्नरीगणः
प्रनृत्यदिव्यकन्यकः प्रवृत्तमंगलक्रमः ।
प्रकृष्टसेवकव्रजः प्रहृष्टभक्तमण्डली
मुदे ममाऽस्तु सन्ततं त्वदीयरत्नमण्डपः ।।११।।

{भावार्थ}

जहाँ मृदंगकी ध्वनन् ध्वनि हो रही है, किन्नरीगण गायन कर रही हैं, दिव्य कन्यायें जहाँ मंगलक्रममें प्रवृत्त हुई नृत्य कर रही हैं, बलशाली सेवकवृन्द जहाँ सन्नद्ध हैं और भक्तमण्डली जहाँ पूर्ण हर्षसे भरी है, ऐसा तेरा रत्न मण्डप हे माता ! मेरे संतत आनन्दको बढ़ानेवाला हो ।

{तोरण द्वार}

सुवर्णरत्नभूषितैर्विचित्रवस्त्रधारिभिः
गृहीतहेमयष्टिभिर्निरुद्धसर्वदेवतैः ।
असंख्यसुन्दरीजनैः पुरःस्थितैरधिष्ठितो
मदीयमेतु मानसं त्वदीयतुंगतोरणः ।।१२।।

{भावार्थ}

स्वर्ण एवं रत्नोंके आभूषणोंसे भूषित, विचित्र वेषभूषाओंमें सजी, हाथोंमें स्वर्णके रत्नजटित दंड लिये हुए, सर्वदेवताओंकी भीड़को प्रवेश करनेसे रोकती हुई, असंख्य सुन्दरी स्त्रियाँ जिस पुरके आगे अधिष्ठित हैं, हे माँ, मेरे मनमें तेरा वह विशाल ऊँचा तोरण द्वार बसा रहे ।

{भगवती मातंगीका स्मरण}

कस्तूरिकाश्यामलकोमलांगीं कादम्बरीपानमदालसांगीं ।
वामस्तनालिंगितरत्नवीणां मतंगकन्यां मनसा स्मरामि ।।१३।।

{भावार्थ}

मैं उन मतंग मुनिकी कन्याका मनसे स्मरण करता हूँ, जो कस्तूरीके वर्णकी श्यामरंगकी हैं, परन्तु परम सुकोमल जिनका गात्र है, जो कादम्बरी {कदम्बवृक्षके फलसे बननेवाली} सुरा पान कर मदसे अलसाये अंग वाली हो

रही हैं, जिनके वामस्तनसे सटी हुई रत्नजटित वीणा है ।

{दूतिका देवीका स्मरण}

प्रमत्तवारुणीरसैर्विघूर्णमानलोचनाः
प्रचण्डदैत्यसूदनाः प्रविष्टभक्तमानसाः ।
उपोढकज्जलच्छबिच्छटाविराजिविग्रहाः
कपालशूलधारिणीःस्तुवे त्वदीयदूतिकाः ।।१४।।

{भावार्थ}

जो वारुणी रसपानके कारण प्रमत्त हो रही हैं, जिनके लाल–लाल लोचन मदसे विघूर्णित हो रहे हैं, जो दैत्योंका नाश करनेमें अति प्रचण्ड हैं, साथ ही निज भक्तोंके मानसमें प्रविष्ट रहती हैं, जिनकी कृष्ण कज्जल छवि है एवं जिनके विग्रहमें शोभा समायी रहती है, उन कपाल एवं शूल धारण करनेवाली तेरी दूतिका देवीकी मैं स्तुति करता हूँ ।

{श्रीमण्डपके आभ्यन्तर मन्दिरका वर्णन}

आस्तीर्णारुणकंबलासनयुतं पुष्पोपहारान्वितं
दीप्तानेकमणिप्रदीपसुभगं राजद्वितानोत्तमम् ।
धूपोदगारिसुगन्धिसंभ्रममिलदभृंगावलीगुंजितं
कल्याणं वितनोतु मेऽनवरतं श्रीमण्डपाभ्यन्तरम् ।।१५।।

{भावार्थ}

जिसमें ऊनके अरुण गलीचे बिछे हैं एवं पुष्पोंकी परम सुगन्धित मालायें लटक रही हैं, अनेक सुभग मणि प्रदीप जहाँ प्रकाश फैला रहे हैं, जहाँ उत्तम चँदोवा शोभा पा रहा है, चारों ओर धूपकी सुगन्ध महक रही है एवं उससे संभ्रमित भृंगावली गुंजन कर रही है, ऐसा शोभाशाली, माँ, तेरे मण्डपका भीतरी भाग अनवरत मेरे लिये कल्याणकारी होवे ।

{परदेवताका स्मरण}

कनकरचिते पंचप्रेतासनेन विराजिते
मणिगणचिते रक्तश्वेताम्बरास्तरणोत्तमे ।
कुसुमसुरभौ तल्पे दिव्योपधानसुखावहे
हृदयकमले प्रादुर्भूतां भजे परदेवतां ।।१६।।

{भावार्थ}

जो स्वर्ण रचित मंचमें प्रेतासनोंसे युक्त आसन पर विराजित हैं उस आसन पर अनन्त मणियाँ खचित हैं एवं लाल एवं श्वेत उत्तम अम्बरका

बिछौना लगा है, उस शय्यामें कुसुमोंकी विलक्षण महक उठ रही है एवं सुख देने वाले दिव्य तकिये लगे हैं, हे माँ ! मेरे हृदय कमलमें प्रादुर्भूत परदेवताकी इस छविका मैं भजन करूँ ।

सर्वांगस्थितिरम्यरूपरुचिरां प्रातः समभ्युत्थितां
जृम्भामञ्जुमुखाम्बुजां मधुमदव्याघूर्णदक्षत्रयां ।
सेवायात समस्तसन्निधिसखीस्सम्मानयन्तीं दृशा
सम्पश्यन् परदेवतां परमहो मन्ये कृतार्थं जनः ।।१७।।

{भावार्थ}

प्रातः जो सद्य जाग्रत होकर उठी हैं, फिर भी जिनके सर्वांग अति मनोहर रुचिर हैं, मुख सरोजमें जँभाई आरही है, वह अति सुन्दर लग रहा है, मधु पानके मदसे तीनों नेत्र चलायमान चंचल हैं, सेवाकरनेवाली समस्त सखियोंका जो उनकी सन्निधिमें हैं वे अपने नेत्रोंसे ही सम्मान कर रही हैं, ऐसी शोभामयी परदेवताके दर्शनसे मैं अपने आपको परम भाग्यवान मानता हुआ कृतार्थ जान रहा हूँ ।

{मंगल – आरती}

उच्चैस्तोरणवर्त्तिवाद्यनिवहध्वाने समुज्जृम्भिते
भक्तैर्भूमिविलग्नमौलिभिरलं दण्डप्रणामे कृते ।
नानारत्नसमूहनद्धकथनस्थालीसमुद्भासितां
प्रातस्ते परिकल्पयामि गिरिजे नीराजनामुज्ज्वलाम् ।।१८।।

{भावार्थ}

महलके बाहरी मुख्य द्वार पर सुमधुर वाद्य ध्वनि विकसित हो रही है, भक्त लोग अपने मस्तकोंको पृथ्वी पर टेक–टेककर दण्डवत् प्रणाम कर रहे हैं, ऐसे समय प्रभातकालमें नाना प्रकारके रत्नसमूहोंसे भरी अत्यन्त प्रकाशमान थाली लेकर हे गिरिजे ! मैं आपका उज्ज्वल नीराजना करनेका संकल्प {परिकल्पना} करूँ ।

{पाद्य–अर्घ्य, मधुपर्क, आचमन एवं प्रणिपात}

पाद्यं ते परिकल्पयामि पदयोरर्घ्यं तथा हस्तयोः
सौधीभिर्मधुपर्कमम्ब मधुरं धाराभिरास्वादय ।
तोयेनाचमनं विधेहि शुचिना गांगेन मत्कल्पितं
साष्टांगप्रणिपातमीशदयिते दृष्ट्या कृतार्थीकुरु ।।१९।।

{भावार्थ}

माँ ! मैं तेरे चरणोंमें पाद्य देनेका संकल्प कर रहा हूँ तथा हाथोंमें अर्घ्य देनेका संकल्प कर रहा हूँ । सुधाके समान धाराके रूपमें प्रदान किये मधुर मधुपर्कका हे माँ, आप स्वाद लें । मेरे द्वारा संकल्प करके लाये पवित्र गंगाजल से माँ ! आप आचमन करें, इसके उपरान्त मेरे साष्टांग प्रणामको स्वीकार करके हे भगवान शिवकी प्रिये, मुझे कृतार्थ करें ।

{दर्पण–दर्शन, दन्तधावन, मुखधोना–पौंछना तथा ताम्बूल समर्पण}

मातः पश्य मुखाम्बुजं सुविमले दत्ते मया दर्पणे
देवि स्वीकुरु दन्तधावनमिदं गंगाजलेनान्वितम् ।
सुप्रक्षालितमाननं विरचयन्स्निग्धाम्बरप्रोञ्छनं
द्रागंगीकुरु तत्वमम्ब मधुरं ताम्बूलमास्वादय ।।२०।।

{भावार्थ}

हे माता ! मेरे द्वारा दिये दर्पणमें अपने विमल मुखकमलका दर्शन करें, साथ ही दन्तधावनके लिये मेरे द्वारा लाये इस गंगाजलको भी हे देवि! स्वीकार करें । अपने मुखको अच्छी प्रकार धोकर एवं अत्यन्त सुकोमल वस्त्रसे पौंछकर हे अम्बे ! आप परम मधुर ओठ लाल करनेवाला ताम्बूल आस्वादन करें ।

{पादुका–समर्पण एवं स्नानगृहकी ओर गमन}

निधेहि मणिपादुकोपरि पदाम्बुजं मज्जना–
लयं व्रज शनैः सखीकृतकराम्बुजालम्बनम् ।
महेशि करुणानिधे तव दृगन्तपातोत्सुकान्
विलोकय मनागमूनुभयसंस्थितान्देवतान् ।।२१।।

{भावार्थ}

हे माता ! अपने चरणकमलोंमें इस मणिपादुकाको पहन लें तथा धीरे–धीरे सखी द्वारा दिये आलम्बनको स्वीकार कर उसका हाथ पकड़ स्नानगृहकी ओर चलें । हे महेशि ! करुणामयी, आपकी दृष्टिकी कोरकेद्वारा देखे जानेको लालायित इन भयग्रस्त देवताओंको क्षणभर देख लीजिये ।

{स्नानगृह दर्शन}

हेमरत्नवरणेन वेष्टितं विस्तृतारुणवितानशोभितं
सज्जसर्वपरिचारिकाजनं पश्य मज्जनगृहं मनो मम ।।२२।।

{भावार्थ}

हे मेरे मन ! तू स्वर्ण एवं रत्नोंके आवरण {दीवार} से घिरे एवं सुन्दर चँन्दोवेसे सुशोभित, बहुतसी परिचारिकाओंसे सब प्रकारसे सुसज्जित, जगदम्बाके स्नानगृहका दर्शन कर ।

{स्नानगृहमें प्रवेश}

कनककलशजालस्फाटिकस्नानपीठाद्युपकरणविशालं गन्धमत्तालिमालं ।
स्फुरदरुणवितानं मञ्जुगन्धर्वगानं परमशिवमहेले मज्जनागारमेहि ॥२३॥

{भावार्थ}

जहाँ पर स्वर्णके जलकलशोंकी पंक्तियाँ रखी हैं एवं स्फटिककी स्नानचौकी बनी है, स्नानके सभी विशाल उपकरण, जैसे फव्वारे, स्नानके लघु कुण्डादि, सभी बिल्लौरी पत्थरसे निर्मित हैं, जहाँ चतुर्दिक् इत्रादि पुष्पसारोंकी गन्धसे मत्त भ्रमरोंकी टोलियाँ गुंजार कर रही हैं, जिसपर अरुण वर्णका चन्दौवा तना है, गन्धर्वगण सुमधुर स्वरोंमें गायन कर रहे हैं, शिव महलके इस स्नानघरमें आप प्रवेश करें ।

{दासियोंकी वंदना}

पीनोत्तुंगपयोधराः परिलसत्सम्पूर्णचन्द्रानना–
रत्नस्वर्णविनिर्मिताः परिलसत्सूक्ष्माम्बर प्रावृताः ।
हेमस्नानघटीस्तथा मृदुपटीरुद्वर्तनं कौसुमं
तैलं कंकतिकां करेषु दधतीर्वन्देऽम्ब ते दासिकाः ॥२४॥

{भावार्थ}

जिनके बड़े–बड़े ऊँचे उठे हुए स्तन हैं, जिनका पूर्ण राकाचन्द्रके समान मुख परम शोभामय है, जो हाथोंमें तैल, कंघे आदि लिये हैं, साथ ही स्नान करानेके उपरान्त पहनानेके लिये अनेक स्वर्णखचित रत्नजटित सूक्ष्म अम्बर हाथोंमें लिये हुए हैं, स्नानके लिये स्वर्णके घड़े जो उठाये हैं और उबटनके लिये लाल उबटन भी लिये हैं, माते ! मैं उन तेरी दासियोंकी वन्दना करता हूँ ।

{स्नान करती भगवतीका ध्यान}

तत्र स्फाटिकपीठमेत्य शनकैरुत्तारितालंकृति–
र्नीचैरुज्झित कञ्चुकोपरिहिता रक्तोत्तरीयाम्बरा ।
वेणीबन्धमपास्य कंकतिकया केशप्रसादं मनाक्
कुर्वाणा परदेवता भगवती चित्ते मम द्योतताम् ॥२५॥

{भावार्थ}

वहाँ स्फटिक पत्थरकी स्नानपीठ पर पहुँचकर निर्मित तालमें उतरकर लाल रंगकी ओढ़नी {उत्तरीय} एवं चोली उतार देती हैं, तब वेणीबन्ध खुलवाकर जो कंघीसे केश–प्रसाधन करवा रही हैं – इन परदेवता भगवतीकी छवि मेरे चित्तमें प्रकाशित होती रहे ।

{अभ्यंग, उद्वर्त्तन, नृत्य–संगीत एवं वाद्य–सेवा}

अभ्यंगं गिरिजे गृहाण मृदुना तैलेन सम्पादितं
काश्मीरैरगरुद्रवैर्मलयजैरुद्वर्त्तनं कारय ।
गीते किन्नरकामिनीभिरभितो वाद्ये मुदा वादिते
नृत्यंतीमिह पश्य देवि पुरतो दिव्यांगनामण्डलीम् ।।२६ ।।

{भावार्थ}

हे माता ! सखियाँ सुगन्धित तैलके द्वारा अपने मृदु हाथोंसे तेरे अंगोंमें अभ्यंग करें, इस सेवाको स्वीकार करें, इसके पश्चात् केसर, अगरु एवं मलयज चन्दनसे अपने अंगोंमें उद्वर्तन {पीठी} करावें । हे देवि ! आपके सम्मुख किन्नर कामिनियाँ अति प्रसन्न हुईं वाद्योंका वादन एवं गीतोंका गायन कर रही हैं । हे देवि ! देखिये दिव्यांगना मण्डली आपके सम्मुख नृत्य कर रही है ।

{स्नान–सेवा}

उद्गन्धैरगरुद्रवैस्सुरभिणा कस्तूरिकावारिणा
स्फूर्जत्सौरभयक्षकर्दमजलैः काश्मीरनीरैरपि ।
पुष्पाम्भोभिरशेषतीर्थसलिलैः कर्पूरपाथोभरैः
स्नानं ते परिकल्पयामि गिरिजे भक्त्या तदंगीकुरु ।।२७ ।।

{भावार्थ}

हे गिरिजे ! जिसकी गन्ध महक रही है ऐसे सुरभित अगरुके द्रवसे एवं कस्तूरीके घोलसे सुगन्धित किये जलसे एवं बहुत ही सुगन्धित अंगराग {यक्षकर्दम} के जलसे और केसरके जलसे, फिर गुलाबजल एवं केवड़ाजल आदि पुष्पाम्भोंसे तथा अंतमें समग्रतीर्थोंके जलमें कर्पूर घोलकर उससे, मैं तेरे स्नानकी भक्तिपूर्वक परिकल्पना कर रहा हूँ, कृपया स्वीकार करें ।

{स्नानाम्बर मोचन}

प्रत्यंगं परिमार्जयामि शुचिना वस्त्रेण संप्रोञ्छनं
कुर्वे केशकलापमायततरं धूपोत्तमैर्धूपितम् ।

आलीवृन्दविनिर्मितां यवनिकामास्थाय रत्नप्रभं
भक्तत्राणपरे महेशगृहिणी स्नानाम्बरं मुच्यताम् ।।२८।।

{भावार्थ}

हे महेशगृहिणि ! मैं आपके प्रत्येक अंगको स्वच्छकर अति स्वच्छ वस्त्रसे उन्हें पौंछना चाहता हूँ । आपके गीले केशोंको उत्तमोत्तम धूप से धूपितकर–सुखाकर घने केशोंकी कंघीकर केशरचना करना चाहता हूँ । सखियोंने खचित रत्नोंकी ज्योतिसे दैदीप्यमान यवनिका निर्माण कर तान दी है, हे भक्तोंको संकटसे त्राण दिलाने वाली माँ ! अपने स्नानके समय वस्त्रोंको त्याग दें ।

{वस्त्र एवं कंचुकी पहनना}

पीतं ते परिकल्पयामि निविडं चण्डातकं चण्डिके
सूक्ष्मं स्निग्धमुरीकुरुष्व वसनं सिन्दूरपूरप्रभम् ।
मुक्तारत्नविचित्रहेमरचनाचारुप्रभाभास्वरं
नीलं कञ्चुकमर्पयामि गिरिशप्राणप्रिये सुन्दरि ।।२९।।

{भावार्थ}

हे चंडिके ! मैंने आपके लिये घना पीले रंगका चण्डातक परिकल्पित किया है । आप सूक्ष्म, स्निग्ध सिन्दूरकी प्रभावाला पहनने का वसन स्वीकार करें, मुक्ता, रत्न एवं स्वर्णके विचित्र मेलसे रची सिन्दूर प्रभासे ज्योतित नीली कंचुकी हे गिरीशप्राणप्रिये ! मैं आपको अर्पित कर रहा हूँ ।

{भूषा मण्डप प्रवेश}

विलुलित चिकुरेणच्छादितांसप्रदेशे
मणिनिकरविराजत्पादुकान्यस्तपादे ।
सुललितमवलम्ब्य द्राक्सखीमंसदेशे
गिरिशगृहिणि भूषामण्डपाय प्रयाहि ।।३०।।

{भावार्थ}

हे गिरीश गृहिणी ! अतुलनीय सौन्दर्यशाली केशोंसे आपकी ग्रीवा और स्कंध प्रदेश ढँका हुआ है, आपके चरणोंमें मणि समूहोंसे जटित पादुका पहनी हुई है, द्राक् सखीके स्कंधदेशमें हाथ रखे हैं एवं अत्यन्त ललित रूपमें उसका अवलंबन लिये हैं– आप भूषा मण्डलकी ओर गमन करें ।

{श्रृंगार कक्षमें हेम–सिंहासनमें विराजना}

लसत्कनककुट्टिमस्फुरदमन्दमुक्तावली
समुल्लसितकान्तिभिः कलितशक्रचापव्रजे ।
महाभरणमण्डपे निहितहेमसिंहासनं
सखीजनसमावृतं समधितिष्ठ कात्यायनि ।।३१।।

{भावार्थ}

अहा ! श्रृंगारकक्ष कुटीकी कैसी विलक्षण सुन्दर शोभा है । वह कुटी कनकसे निर्मित है, वहाँ मुक्तावलीके असंख्य हार पड़े हैं, जिनसे मन्द ज्योत्स्ना प्रसरित है । कहीं नील मणियाँ, कहीं प्रवाल, कहीं माणिक्यराशि बिखरी होनेसे शक्रचाप {इन्द्र धनुष} की कान्ति सर्वत्र समुल्लसित है । इस महाभरणमण्डपमें हेम सिंहासन रखा है । हे कात्यायनि माँ ! सखीजनोंसे घिरीं आप इस पर विराजमान होवें ।

{केशरचना, सीमन्त–विरचन, स्वर्णसूत्र एवं
मुक्ताओंसे अलकावलि गूँथना एवं वेणी–संरचना}

स्निग्धं कंकतिकामुखेन शनकैस्संशोध्य केशोत्करं
सीमन्तं विरचय्य चारु विमलं सिन्दूररेखान्वितम् ।
मुक्ताभिर्ग्रथितालकां मणिचितैस्सौवर्णसूत्रैःस्फुटं
प्रान्ते मौक्तिकगुच्छकोपलतिकां ग्रथ्नामि वेणीमिमां ।।३२।।

{भावार्थ}

अत्यन्त सुकोमल कंघीके दाँतोंसे धीरे–धीरे केशोंको सुलभाकर एवं अलकोंमें मोतीमालायें गूँथकर, मणियों एवं स्वर्णसूत्रसे वेणी बाँधकर एवं पीछे मुक्ताओंके गुच्छ बाँधकर मैंने आपकी वेणी गूँथी है एवं केशोंको सीमन्तरेखाके पाससे दो भागोंमें करके मध्य रेखामें सिन्दूर रेखा अंकित कर दी है ।

{चूड़ामणि समर्पण}

विलम्बिवेणीभुजगोत्तमांगस्फुरन्मणिश्रान्तमुपानयन्तम् ।
स्वरोचिषोल्लासितकेशपाशं महेशि चूड़ामणिमर्पयामि ।।३३।।

{भावार्थ}

अत्यन्त लम्बी वेणी जिसकी उपमा उत्तम सर्पसे की जा सकती है, उसपर हे महेशी ! मैं चूड़ामणि लगाना चाहता हूँ जो अपनी ज्योत्स्नासे केश–पाशको और अधिक उल्लासयुक्त शोभा प्रदान करदे ।

{अंग–वन्दना}

त्वामाश्रयद्भिः कबरीतमिस्रैर्बन्दीकृतं द्रागिव भानुबिम्बं ।
मृडानि ! चूडामणिमादधानं वन्दामहे तावकमुत्तमांगम् ।।३४।।

{भावार्थ}

हे मृडानि ! आपके आश्रयका कैसा माहात्म्य है कि उसे पाकर कबरी रूपी अन्धकारने चूड़ामणि रूप भानुबिम्बको बन्दी कर लिया है । मैं आपके उन उत्तम अंगोंकी जहाँ चूड़ामणि सुशोभित है, वन्दना करता हूँ।

{भाल–भूषण}

स्वमध्यनद्धहाटकस्फुरन्मणिप्रभाकुलं
विलम्बिमौक्तिकच्छटाविराजितं समन्ततः ।
निबद्धलक्षचक्षुषा भवेन भूरि भावितं
समर्पयामि भास्वरं भवानि भालभूषणम् ।।३५।।

{भावार्थ}

जो स्वर्णसे निर्मित है, परन्तु मध्यमें जिसके मणियाँ जड़ी हैं, जो मणिकी प्रभासे आकुल है एवं सीमन्तमें विराजित मुक्ताओंकी लड़ियोंकी घटाको जो पूरी तरहसे हतप्रभ कर रहा है, आँखोंको अपने रूपमें जो बाँध लेता है एवं भगवान् शंकर जिसके सौन्दर्यकी भूरि–भूरि भावना करते हैं, ऐसा तेजोमय भाल–भूषण हे भवानी ! मैं आपको समर्पित करता हूँ ।

{दिव्यांजन प्रदान}

मीनाम्भोरुहखञ्जरीटसुषमाविस्तारविस्मारके
कुर्वाणे किल कामवैरिमनसः कन्दर्पबाणप्रभां ।
माध्वीपानमदारुणेऽतिचपले दीर्घे दृगम्भोरुहे
देवि ! स्वर्णशलाकयोर्जितमिदं दिव्यांजनं दीयताम् ।।३६।।

{भावार्थ}

जो मीन, कमल, खञ्जन पक्षीकी सुषमासे भी अधिक शोभा सम्पन्न हैं एवं जो कामवैरी, भगवान शंकरके मनमें कन्दर्प बाणके दुर्धर्ष तेजको प्रकट कर देते हैं, जो कदम्ब–माध्वीके पानसे अरुणाई लिये रहते हैं, अत्यन्त चपल हैं, दीर्घ हैं, ऐसे आपके नेत्रकमलोंमें हे देवि ! मैं स्वर्णकी शलाका अर्जित दिव्य अंजन लगाना चाहता हूँ ।

{नथ–आभूषण समर्पण}

मध्यस्थारुणरत्नकान्तिरुचिरां मुक्तामुगोद्भासितां ।
दैवाद्भार्गवजीवमध्यगरवेर्लक्ष्मीमधः कुर्वतीं ।
उत्सिक्ताधरबिम्बकान्तिविसरैर्भौमीभवन्मौक्तिकां
मद्दत्तामुररीकुरुष्व गिरिजे नासाविभूषामिमाम् ।।३७।।

{भावार्थ}

जिसके मध्य अरुण रत्नकी रुचिर कान्ति दमक रही है एवं इधर–उधर मोती, मूँगा आदि रत्न उद्भासित हो रहे हैं, जो लक्ष्मीकी शोभाको तुच्छ कर रहा है तथा जिसका रत्न, शुक्रके नक्षत्रकी तरह चमक रहा है, अधर बिम्बकी लाल आभासे बेसरका मोती मंगल नक्षत्रकी तरह प्रतीत हो रहा है, हे गिरिजे ! ऐसा यह मेरे द्वारा प्रदान किया, नासिकाका आभूषण आप ग्रहण करें ।

{स्वर्ण ताटंक प्रदान}

उडुकृतपरिवेषस्पर्द्धया शीतभानोरिव
विरचितदेहद्वन्द्वमादित्यबिम्बं ।
अरुणमणिसमुद्यत्प्रान्तविभ्राजिमुक्तं
श्रवसि परिनिधेहि स्वर्णताटंकयुग्मम् ।।३८।।

{भावार्थ}

हे ! माता नक्षत्रोंकी शोभाकी स्पर्द्धामें, शीतल सूर्यके बिम्बके समान जिनकी आकृतिका निर्माण किया गया है, बीचमें अरुण मणि है और चारों ओर मुक्ता शोभित हैं, ऐसे कानोंमें युगल स्वर्ण ताटंक आभूषण, माँ ! आप ग्रहण करें।

{कण्ठाभरण प्रदान}

मरकतवरपद्मरागहीरोत्थितगुलिकात्रितयावनद्धमध्यम् ।
विततविमलमौक्तिकञ्च कण्ठाभरणमिदं गिरिजे समर्पयामि ।।३९।।

{भावार्थ}

श्रेष्ठ नीलम {मरकत} मणि, पद्ममणि एवं हीरामणियोंकी तीन लड़ियोंके मध्यमें, विमल मोतियोंसे निर्मित इस कण्ठाभरणको, हे गिरिजे ! मैं आपको समर्पित करता हूँ ।

{चतुष्किका हार प्रदान}

नानादेशसमुत्थितैर्मणिगणप्रोद्यत्प्रभामण्डल–
व्याप्तैराभरणैर्विराजितगलां मुक्ताच्छटालंकृतां ।
मध्यस्थारुणरत्नकान्तिरुचिरां प्रान्तस्थमुक्ताफल
व्रातामम्ब चतुष्किकां परशिवे वक्षस्थले स्थापय ।।४०।।

{भावार्थ}

देश–विदेशके नाना प्रकारके अनमोल मणियोंसे जिसका प्रभा मण्डल दिप–दिपा रहा है, गलेमें अनेक आभरणोंके मध्य अपने निर्मल मोतियोंकी छटा बिखेरता हुआ, चारों ओर मुक्ता एवं मध्यमें अरुण कान्तिके रुचिर रत्नोंके समूहसे निर्मित, इस चतुष्किका नामक आभूषणको, हे माता ! आप वक्षस्थलमें धारण करें।

{त्रिवली हारत्रयी समर्पण}

अन्योन्यं प्लावयन्ती सततपरिचलत्कान्तिकल्लोलजालैः
कुर्वाणा मज्जदन्तःकरणविमलतां शोभितेव त्रिवेणी ।
मुक्ताभिः पद्मरागैर्मरकतमणिभिर्निर्मिता दीप्यमानै–
र्नित्यं हारत्रयी ते परशिवरसिके चेतसि द्योततां नः ।।४१।।

{भावार्थ}

अपने भीतरसे उद्गमित कान्तिकी हिलोरोंके जालसे जो अन्य–अन्य आभूषणोंको आप्लावित कर दे रही हैं, जो त्रिवेणीकी शोभा बिखेरती हुई विमलतासे अन्तःकरणको नहला रही हैं, ऐसी मुक्ता {गंगा}, पद्मराग {सरस्वती}, मरकत {यमुना} मणियोंसे निर्मित त्रिवेणीकी शोभा धारण करने वाली आपकी हारत्रयी, हे परशिवरसिकिनी ! मेरे हृदयको नित्य प्रकाशमान करती रहे ।

{युग्म कनक–कटक {कड़े} समर्पण}

करसरसिजनाले विस्फुरत्कान्तिजाले विलसदमलशोभे चञ्चदीशाक्षिलोभे
विविधमणिमयूखोद्भासितं देवि दुर्गे कनककटकयुग्मं बाहुयुग्मे निधेहि ।।४२

{भावार्थ}

जो कर–कमल–नाल–रूपी बाहुओंमें शोभाजाल प्रस्फुटित कर रहे हैं, अपनी परम निर्मल शोभाके विलाससे भगवान् शंकरकी चञ्चल आँखोंमें लुब्धताका सृजन कर रहे हैं, अनेक प्रकारकी मणियोंकी ज्योत्स्नासे जो दमक रहे हैं, हे देवि दुर्गे ! आपकी बाहुओंमें ऐसे इन स्वर्णके दोनों कड़ोंको धारण कर लीजिये ।

{वलय श्रेणी {चूड़ियाँ} समर्पण}

वितत निजमयूखैर्निर्मितामिन्द्रनीलैः
विजितकमलनालालीनमत्तालिमालां
मणिगणखचिताभ्यां कंकणाभ्यामुपेतां
कलयवलयराजीं हस्तमूले महेशि ।।४३।।

{भावार्थ}

जो इन्द्रनील मणियोंसे निर्मित हैं और जिन्होंने अपनी कान्तिसे कमलनालमें रसपान निमग्न मत्त–भ्रमर पंक्तियोंकी शोभाको पराजित कर दिया है एवं जिनमें अनेक अन्य बहुमूल्य मणियाँ भी खचित हैं तथा जो कंकणोंसे मिली हुई हैं, ऐसी वलय {चूड़ियों}की पंक्ति हे महेशि ! आपके हाथोंके मूलदेशको सुशोभित करें ।

{अंगुलीयक {अँगूठी समर्पण}

आलवालमिव पुष्पधन्वना बालविद्रुमलतासु निर्मितम् ।
अंगुलीषु विनिधीयतां शनैरंगुलीयकमिदं मदर्पितम् ।। ४४।।

{भावार्थ}

भगवान् कामदेवसे जो आलवालकी तरह घिरी रहती है, बाल विद्रुमकी लताकी तरह जो निर्मित है, ऐसी मेरे द्वारा समर्पित अँगूठी, हे माता ! आप अँगुलियोंमें धारण करें ।

{कटिमेखला समर्पण}

विजितहरमनोभूमत्तमातंगकुंभ–स्थलविलुलितकूजत्किंकिणीजालतुल्यां ।
अविरतकलनादैरीशचेतो हरन्तीं विविधमणिनिबद्धां मेखलामर्पयामि ।। ४५।।

{भावार्थ}

जिसने भगवान् शंकरका मन हरण कर लिया है एवं जो मत्त हाथीके मस्तक पर सुशोभित किंकिणीकी तरह शब्द कर रही हैं, जिनकी अविरत सुन्दर झंकारसे भगवान् शंकरका चित्त हरण किया जा रहा है, ऐसी विविध मणियोंसे गुँथी मेखला मैं आपको समर्पित कर रहा हूँ ।

{नीवी–बंधनकी डोरी}

व्यालम्बमानवरमौक्तिकगुच्छशोभि विभ्राजिहाटकपुटद्वयरोचमानम् ।
हेम्ना विनिर्मितमनेकमणिप्रबन्धं नीवीनिबंधनगुणं विनिवेदयामि ।। ४६।।

{भावार्थ}

जो लम्बी आकृतिकी है एवं श्रेष्ठ मुक्ताओंके गुच्छ जिसमें शोभा दे रहे हैं, जिनके दोनों ओर स्वर्णकी पुट दी गयी है, जिससे उनकी शोभा बढ़ रही है, जो स्वर्णसे निर्माणकी गयी हैं एवं अनेक मणियाँ जिनमें गुँथी हैं, ऐसी नीवी निबन्धनकी डोरी मैं माँ आपको अर्पित कर रहा हूँ ।

{चरण–सरोजकी अँगुलियोंमें बिछुआ आभूषणका ध्यान}

विनिहतनवलाक्षा पंकबालातपौघे मरकतमणिराजीमञ्जुमञ्जीरघोषे ।
अरुणमणि समुद्यत्कान्तिधाराविचित्रस्तवचरणसरोजे हंसकः प्रीतिमेतु ।।४७।।

{भावार्थ}

जिनमें बाल रविकी शोभा वाली नई लाक्षा–पंक बहुतायतसे लगी है एवं मरकत मणियोंकी अवलियों {लडियों}से युक्त मञ्जुल मंजीर निनादित कर रही हैं, जिनकी कान्ति ऐसी है मानो अरुण मणियोंकी विचित्र शोभा धारा प्रवाहित हो रही हो, ऐसे आपके चरण कमलोंमें संलग्न हंसक {पैरकी अँगुलियोंके बिछुए} नामक आभूषणमें मेरी प्रीति बढ़े ।

{कनक–घुंघुरूओं का ध्यान}

निबद्धशितिपट्टकप्रवरगुच्छसंशोभितां
कलक्वणितमंजुलां गिरिशचित्तसम्मोहिनीम् ।
अमन्दमणिमंडलीविमलकान्तिकिम्मीरितां
निधेहि पदपंकजे कनकघुंघुरूमम्बिके ।।४८।।

{भावार्थ}

शुभ्र कपड़ेमें जो बँधे एवं जिनमें श्रेष्ठ गुच्छ शोभा दे रहे हैं जो मंजुल रुचिर ध्वनि कर रहे हैं एवं भगवान् शिवके चित्तमें सम्मोहिनी डाल रहे हैं, जिनमें तेजस्वी मणि–समूह खचित हैं, जिनकी परम निर्मल कान्ति सर्वत्र फैल रही है, ऐसे कनक घुँघुरू हे अम्बे ! आपके चरणोंमें धारण कर लीजिये।

{पद्मरागमणि नूपुर–द्वयी समर्पण}

विस्फुरत्सहजरागरंजिते शिञ्जितेन कलितां सखीजनैः ।
पद्मरागमणिनूपुरद्वयीमर्पयामि तव पादपंकजे ।।४९।।

{भावार्थ}

चरणोंकी लालिमासे जो सहज ही रंजित हैं एवं जिनकी शिञ्जन ध्वनिको सुनकर सखीगण आनन्दसे विकसित हो उठती हैं, हे माते ! मैं

आपके दोनों चरणकमलोंमें ऐसी शोभामयी पद्मराग मणियोंकी नूपुर–द्वयी समर्पण करता हूँ ।

{नखमण्डलीकी शोभा}

पादाम्बुजमुपासितं परिगतेन शीतांशुना
कृतां तनुपरस्परामिव दिनान्तरागारुणाम् ।
महेशि नवयावकद्रवभरेण शोणीकृतां
नमामि नखमण्डलीं चरणपंकजस्थां तव ।।५०।।

{भावार्थ}

चरण–कमलोंकी जो अपनी शीत–किरणोंसे उपासना करते रहते हैं एवं दिनान्त समयके {संध्याकाल} सूर्यकी लाल–किरणोंकी घटासे शोभायमान रहते हैं; हे महेशि ! मैं आपके चरण कमलोंमें स्थित आपकी नखमण्डलीको नमन करता हूँ, जो गीली नवीन यावक {अलक्तक} के द्रवसे लाल हो रहे हैं।

{कल्हार माला समर्पण}

आरक्तश्वेतपीतस्फुरदुरुकुसुमैश्चित्रितां पट्टसूत्रैः
देवस्त्रीभिः प्रयत्नागरुसमुदितैर्धूपितां दिव्यधूपैः ।
उद्यद्गन्धान्धपुष्पन्धयनिवहसमारब्धझंकारगीतां
चंचत्कल्हारमालां परिपरशिवरसिके कण्ठपीठेऽर्पयामि ।।५१।।

{भावार्थ}

जो लाल, श्वेत एवं पीत शोभाशाली कुसुमोंको पट्टसूत्रमें पिरोकर गूँथी गई है, देवांगनाओं द्वारा जो अगरु एवं दिव्य धूपसे सुवासित हुई समुदित है, जिसकी गन्धसे आकृष्ट अन्धे हुएसे भ्रमरोंकी झंकार गीतोंसे जो स्तुत्य है, ऐसी चपल कल्हार माला हे परशिवरसिके अम्बे ! मैं तेरी कण्ठ–पीठ पर अर्पित करता हूँ ।

{अमृत–पान, ताम्बूल वीटिका–ग्रहण, मुकुर–दर्शन,
मणि पादुका समर्पण}

गृहाण परमामृतं कनकपात्रसंस्थापितं
समर्पयमुखाम्बुजे विमलवीटिकामम्बिके ।
विलोकय मुखाम्बुजं मुकुरमण्डले निर्मले
निधेहि मणिपादुकोपरि पदाम्बुजं सुन्दरि ।।५२।।

{भावार्थ}

हे माते ! सुन्दर रत्न जटित कनक–पात्रमें रखी हुई यह विमल वीटिका {ताम्बूल बीड़ी} अपने मुख कमलमें ग्रहण करो, इसके पश्चात् निर्मल मुकुरमण्डलमें अपने आननसरोजको आप निरखें, हे सुन्दरि ! मणि–पादुकाओंको अपने चरणकमलोंमें धारण करें ।

{सभा मंडपकी ओर प्रस्थान करती माँकी शोभा}

आलम्ब्य स्वसखीं करेण शनकैस्सिंहासनादुत्थिता
कूजन्मन्दमरालमञ्जुलगतिप्रोल्लासिभूषाम्बरा ।
आनन्दप्रतिपादकैरुपनिषद्वाक्यैःस्तुता वेधसा
मच्चित्ते स्थिरतामुपैतु गिरिजा यान्तीसभामण्डपम् ।।५३।।

{भावार्थ}

अपनी प्रिय सखीके हाथका सहारा लेती हुईं जो शनैः सिंहासनसे खड़ी हो गयी हैं, जिनकी गति हंसिनीकी तरह अति मन्द–मन्द एवं अति मंजुल है, साथ ही जो अपनी वस्त्रभूषासे उल्लसित प्रतीत हो रही है जिनके स्वरूपभूत आनन्दकी उपनिषद्वाक्यों द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, रुद्र एवं इन्द्रादि स्तुति कर रहे हैं – वे भगवती गिरिजा सभामण्डपकी ओर जाती हुईं, मेरे चित्तमें स्थिरता पूर्वक निवास करें ।

{भगवतीकी विभूति महिमा}

वेधाः पादतले पतत्ययमसौ विष्णुर्नमत्यग्रतः
शम्भुर्देहिदृगञ्चलं सुरपतिं दूरस्थमालोकय ।
इत्येवं परिचारिकाभिरुदिते सम्माननां कुर्वती
दृग्द्वन्द्वेन यथोचितं भगवती भूयाद्विभूत्यैः मम ।।५४।।

{भावार्थ}

ब्रह्माजी {विधाता} जिनके चरणोंमें पड़े हैं, भगवान् विष्णु आगेसे विनम्र होकर नतमुख नमन कर रहे हैं, भगवान् शिव नयन बिछाये हैं एवं इन्द्र दूरसे दर्शन कर रहे हैं, {निकट प्रवेश नहीं पा रहे हैं}– इस प्रकार परिचारिका द्वारा सभीकी भक्तिभावनाकी सूचना दिये जाने पर जो अपने युगलनेत्रोंसे ही यथोचित सबके सम्मानको ग्रहण कर रही हैं, वे भगवती और उनकी महामहिमा मुझ पर कृपालु हों ।

अग्रे गायति किन्नरी कलपद्मं गन्धर्वकान्ताश्शनै–
रातोद्यानि च वादयन्ति मधुरं सव्यापसव्यस्थिताः ।

कूजन्नूपुरवादमञ्जु पुरतो नृत्यन्ति दिव्यांगना
गच्छन्तः परितः स्तुवन्ति निगमस्तुत्यां विरिञ्चादयः ।।५५।।

{भावार्थ}

जिनके आगे किन्नरियाँ सुन्दर भावोंके पद गायन कर रही हैं एवं गन्धर्वपत्नियाँ अत्यन्त मन्द स्वरमें मधुर स्वरमें बायें एवं दाहिने खड़ी हुई आतोद्य {वीणा, मुरज, बंशी आदि वाद्य} बजा रही हैं एवं सम्मुख दिव्यांगनाएँ नूपुरकी मंजुल झंकार करती नृत्य कर रही हैं एवं आगे बढ़ने पर जिनके सम्मुख विरिञ्चादि देवगण वेद–स्तुति करते खड़े हैं ।

{मिथुन शरभकी वन्दना}

तव दहनसदृक्षैरीक्षणैरेव चक्षु
र्निखिलपशुजनानांभीषयद्भीषणास्यं ।
कृतवसति परेशप्रेयसि द्वारि नित्यं
शरभमिथुनमुच्चैर्भक्तियुक्तो नतोऽस्मि ।।५६।।

{भावार्थ}

जिनका मुख ही इतना भीषण है कि जो समग्र पशुजातिको भयभीत करता है एवं अग्नि के समान जलती आँखोंसे जो देखते हैं किन्तु जो तेरे द्वारमें सदा {दरबानकी तरह} स्थित रहते हैं, हे परेशप्रेयसी ! मैं उन शरभोंके जोड़ेको भक्तिभावसे नमस्कार करता हूँ ।

{सिंहासनकी वन्दना}

स्वस्थानस्थितदेवतागणवृते बिन्दौ मुदा स्थापितं
नानारत्नविराजिहेमविलसत्कान्तिच्छटादुर्दिनम् ।
चञ्चत्कौसुमतूलिकासनयुतं कामेश्वराधिष्ठितं
नित्यानन्दनिदानमम्ब ! सततं वन्दे च सिंहासनम् ।।५७।।

{भावार्थ}

जो अपनी महिमारूप स्वस्थानमें स्थित है, देवगणोंसे जो सदा घिरा रहता है, आनन्द बिन्दुमें जिसकी संस्थापना है, नानाप्रकारके रत्नोंको स्वर्णमें खचित {विलसित} करनेके कारण जिसकी ऐसी शोभा हो रही है, मानो दिन उदय हो गया हो, सेमर, अरण्डकी रूईसे भरा कुसुम्भी रंगके आसनसे युक्त जिसमें भगवान् कामेश्वर विराजित हैं, नित्य आनन्दका जो मूलकारण है, हे अम्बे! मैं आपके ऐसे सिंहासनकी सतत वन्दना करता हूँ ।

{हेम छत्र–समर्पण}

प्रान्तस्फुरद्विमलमौक्तिकगुच्छजालं चञ्चन्महामणिविचित्रितहेमदण्डं ।
उद्यत्सहस्रकरमण्डलचारुहेमच्छत्रं महेशमहिले विनिवेशयामि ।।५८।।

{भावार्थ}

जिसके किनारोंमें निर्मल मुक्तामणियोंके गुच्छोंका जाल लगा है एवं जो चमचमाती महामणियोंसे विजड़ित स्वर्णके दण्डसे युक्त है, जैसे हजारों किरणोंसे युक्त सूर्य उदय हो रहा हो, ऐसी जिसकी शोभा है, हे महेशमहिले! मैं ऐसा हेम–छत्र आपको समर्पित कर रहा हूँ ।

{देवता वन्दन}

संतुष्टां परमामृतेन विलसत्कामेश्वरांकस्थितां
पुष्पौघैरभिपूजितां भगवतीं त्वां वन्दमाना मुदा ।
स्फूर्जत्तावकदेहरश्मिकलनाप्राप्तस्वरूपाभिदाः
श्रीचक्रावरणस्थितास्सविनयं वन्दामहे देवताः ।।५९।।

{भावार्थ}

जो अमृतपानसे परम संतुष्ट हैं, कामेश्वर भगवान्‌के अंकमें जो विहरती रहती हैं, जो पुष्पोंके ढेरसे पूजित होती हैं, जो वन्दना द्वारा अति प्रसन्न हैं, जिनके देहसे निकली रश्मि समूहसे अभेद स्वरूपकी प्राप्ति होती है, उन श्रीचक्रावरणमें स्थित देवताकी मैं वन्दना करता हूँ ।

{भगवतीके चतुष्टय स्वरूपकी वन्दना}

आधारशक्त्यादिकमाकलय्य मध्ये समस्ताधिक योगिनीं च।
मित्रेशनाथादिकमत्र नाथचतुष्टयं शैलसुते नतोऽस्मि ।।६०।।

{भावार्थ}

आधार शक्तियोंको लेकर, मध्यमें समस्त योगिनियों सहित तब मित्रेशनाथादि नाथ–चतुष्टय सहित हे शैलसुते ! मैं सबको नमन करता हूं।

{आसन षटक की वन्दना}

त्रिपुरासुधार्णवासनमारभ्य त्रिपुरमालिनीं यावत् ।
आवरणाष्टकसंस्थितमासनषटकं नमामि परमेशि !।।६१।।

{भावार्थ}

हे परमेशि ! त्रिपुरासुधार्णवासन से लेकर त्रिपुरमालिनी पर्यन्त आठ आवरण एवं इनमें संस्थित आसन षटककी मैं वन्दना करता हूँ ।

{दिशाधिपति देवताओंकी वन्दना}

ईशाने गणपं स्मरामि विचरद्विघ्नान्धकारच्छिदं
वायव्ये बटुकञ्च कज्जलरुचिं व्यालोपवीतान्वितम् ।
नैऋत्ये महिषासुरप्रमथिनीं दुर्गाञ्च सम्पूजय
नाग्नेयेऽखिलभक्तरक्षणपरं क्षेत्राधिनाथं भजे ॥६२॥

{भावार्थ}

ईशान कोणमें भगवान् गणेशको मैं स्मरण करता हूँ जो समग्र विघ्न अन्धकार का समूल नाश करने वाले हैं । वायव्य कोणमें मैं बटुक भैरवकी वन्दनाकरता हूँ जो सर्पका उपवीत धारण करते हैं एवं कृष्ण कज्जल की सी आकृति वाले हैं । नैऋत्यमें महिषासुरमर्दिनी दुर्गाकी मैं सम्यक् प्रकारसे पूजा कर रहा हूँ एवं आग्नेय में अखिल भक्तोंकी रक्षा करने वाले क्षेत्राधिनाथ भगवान्का मैं भजन करता हूँ ।

{सर्व पीठोंकी स्तुति}

उड्याणजालन्धरकामरूपपीठानिमान्पूर्णगिरिप्रसक्तान् ।
त्रिकोणदक्षाग्रेमसव्यभागमध्यस्थितान् सिद्धिकरान्नमामि ॥६३॥

{भावार्थ}

उड्डीयान, जालन्धर, कामरूप एवं पूर्णगिरि आदि सम्पूर्ण पीठोंको जो भगवतीके स्वरूपभूत त्रिकोणके दक्षिण, आगे, बाँयें एवं मध्यमें स्थित हैं – जो सर्व सिद्धियोंको देने वाले हैं, मैं नमस्कार करता हूँ ।

{पंचप्रेतोंकी वन्दना}

लोकेशः पृथ्वीपतिर्निगदितो विष्णुर्जलानां प्रभु –
स्तेजोनाथ उमापतिश्च मरुतामीशस्तथा चेश्वरः ।
आकाशाधिपतिस्सदाशिव इति प्रेताभिधामागता –
नेताश्चक्रबहिःस्थितान्सुरगणान्वन्दामहे सादरम् ॥६४॥

{भावार्थ}

जिन्हें पृथ्वीपति लोकेश {ब्रह्मा} कहा जाता है और जलके अधिदेवता प्रभु भगवान् विष्णु, तेजोनाथ उमापति भगवान् रुद्र, मरुतोंके ईश स्वामी इन्द्र एवं आकाशाधिपति भगवान् सदाशिव – ये सभी प्रेत नामसे विख्यात देवगण जो चक्रके बाहर स्थित हैं, इन सभीकी मैं आदरपूर्वक वन्दना करता हूँ ।

{भगवान् चन्द्रमाकी षोडश कलाओंकी वन्दना}

तारानाथकलाप्रवेशनिगमव्याजाद्गतासुप्रथं
त्रैलोक्ये तिथिषु प्रवर्त्तितकलाकाष्ठादिकालक्रमम् ।
रत्नालंकृतिचित्रवस्त्रललितं कामेश्वरीपूर्वकं
नित्याषोडशकं नमामि लसितं चक्रात्मनोरन्तरे ।। ६५ ।।

{भावार्थ}

भगवान् चन्द्रदेव अपनी सुन्दर चालसे अपनी कलाओंमें प्रवेश कर वेदोक्त विधिसे गमन करते हैं, इसीसे त्रिलोकीमें तिथियाँ प्रवर्त्तित होती हैं एवं कला–काष्ठादि काल–क्रम बनता है । वे सभी षोडश कलाएँ जो रत्नालंकारों से एवं विचित्र रंगोंके ललित वस्त्रोंमें सजी हैं एवं भगवती कामेश्वरीके सहित हैं, उन नित्या षोडश चक्रात्मक कलाओंको मैं अपने हृदयमें नमन करता हूँ ।

{श्री गुरु वन्दना}

हृदि भावितदैवतं प्रयत्नाभ्युपदेशानुगृहीतभक्तसंगम् ।
स्वगुरुक्रमसंज्ञचक्रराजस्थितमोघत्रयमानतोऽस्मि मूर्ध्ना ।।६६ ।।

{भावार्थ}

जिन्होंने अपने हृदयमें देवताको प्रयत्नपूर्वक भावित कर लिया है तथा जो अपने संगी भक्तोंको उपदेशसे अनुगृहीत करते रहते हैं उन स्वगुरु क्रमसे, गुरु, परम गुरु एवं परमेष्ठी गुरुरूप त्रय समूहको मैं मस्तक भुकाकर प्रणाम करता हूँ ।

दिव्यौघ एवं मानवौघों का शास्त्रक्रमानुसार वर्णन दिया जा रहा है ––

ये दिव्यौघ हैं – परप्रकाशानन्दनाथ, परमेशानन्दनाथ, परशिवानन्दनाथ, कामेश्वर्यम्बानन्द, मोक्षानन्द, कामानन्द, अमृतानन्दनाथ ।

ये सिद्धौघ हैं – ईशानन्दनाथ, तत्पुरुषानन्दनाथ, अघोरानन्दनाथ, वामदेवानन्दनाथ, सद्योजातानन्दनाथ ।

ये मानवौघ हैं – पञ्चोत्तरानन्दनाथ, परमानन्द, सर्वज्ञानन्द, सर्वानन्द, सिद्धानन्दनाथ, गोविन्दानन्दनाथ, शंकरानन्दनाथ ।

{षडंग वन्दना}

हृदयमथशिरःशिखाखिलाद्ये कवचमथो नयनत्रयञ्च देवि ।
मुनिजनपरिचिन्तितं तथास्त्रं स्फुरतु सदा हृदयं षडंगमेतत् ।।६७ ।।

{भावार्थ}

जिन छः अंगोंमें भगवतीका क्रमशः मंत्रन्यास किया जाता है, वे हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र त्रय एवं अस्त्र जिन्हें मुनिजन भली प्रकारसे चिन्तन करते हैं – ये मेरे हृदयमें सदा विकसित हों ।

{अणिमादि सिद्धियों का नमन}

त्रैलोक्यमोहनमिति प्रथिते तु चक्रे
चञ्चद्विभूषणगणत्रिपुराधिवासे ।
रेखात्रये स्थितवतीरणिमादिसिद्धी–
र्मुद्रा नमामि सततं प्रकटाभिधास्ताः ।।६८।।

{भावार्थ} {प्रथम आवरण में}

त्रैलोक्यमोहन नामसे कहे जाने वाले चक्रमें, भगवती त्रिपुराके निकट जो विभूषणोंसे भूषित रहती हैं एवं तीन रेखाओंमें जिनका वास है उन अणिमा, लधिमा, महिमा, ईशत्व, वशित्व, प्राकाम्य, मुक्ति, इच्छा, प्राप्ति एवं सर्वकाम नामक सिद्धियों, ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी नामक मातृ शक्तियों एवं सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशंकरी, सर्वोन्मादिनी, सर्वमहांकुशा, सर्वखेचरी, सर्वबीज, सर्वयोनि एवं सर्व त्रिखण्डा मुद्राशक्तियोंको जो अपने–अपने नामसे प्रकट हैं, मैं सतत वन्दना करता हूँ ।

{कामाकर्षिणी योगिनियों की वन्दना}
{द्वितीय आवरण में}

सर्वाशापरिपूरके वसुदलद्वन्द्वेन विभ्राजिते
विस्फूर्जत्त्रिपुरेश्वरीनिवसतौ चक्रे स्थिता नित्यशः ।
कामाकर्षिणिकादयो मणिगणभ्राजिष्णुदिव्याम्बरा
योगिन्यः प्रदिशन्तु कांक्षितफलं विख्यातगुप्ताभिधाः ।।६९।।

{भावार्थ}

सर्वाशापरिपूरक नामसे शोभामय व सुदल द्वन्द्वके रूपमें जो विस्फूर्जित हैं एवं भगवती त्रिपुरेश्वरीके साथ श्रीचक्रमें नित्यशः स्थित हुई निवास करती है, उन मणिमय आभावाली दिव्याम्बरा कामाकर्षिणि, बुद्ध्याकर्षिणि, अहंकाराकर्षिणि, शव्दाकर्षिणि, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, चित्त, धैर्य, स्मृति, नाम, बीज, आत्मा, अमृत एवं शरीराकर्षिणि नित्याकलादेवियों योगिनियोंको जिनका

नाम गुप्त रूपमें विख्यात है, कांक्षित फल प्रदान करनेके लिये प्रणाम करता हूँ ।

{तृतीय आवरण में अनंगकुसुमादि देवियोंका पूजन}

महेशि ! वसुभिर्दलैर्लसति सर्वसंक्षोभणे
विभूषणगणस्फुरत्त्रिपुरसुन्दरीसद्मनि ।
अनंगकुसुमादयो विविधभूषणोद्भासिता
दिशन्तु मम कांक्षितं तनुतराश्च गुप्ताभिधाः ।।७०।।

{भावार्थ}

हे महेशि ! वसुदलोंमें सर्व संक्षोभणमें शोभायमान विभूषण गुणोंसे विकसित भगवती त्रिपुरसुन्दरीके प्रासादमें विविध भूषणोंसे उद्भासित, अनंगकुसुमादेवी, अनंगमेखलादेवी, अनंगमदनादेवी, अनंगमदनातुरा, अनंगरेखा, अनंगवेगिनी, अनंगांकुशादेवी एवं अनंगमालिनीदेवी हैं, वे मेरी इच्छा {कांक्षित पद} को पूर्ण करें, जिनका स्वरूप परम गुप्त है ।

{तुरीयावरण}

{सर्वसंक्षोभिणी आदि शक्तियोंकी वन्दना}

लसद्युगदशारके स्फुरतिसर्वसौभाग्यदे
शुभाभरणभूषितत्रिपुरवासिनीमन्दिरे ।
स्थिता दधतु मंगलं सुभगसर्वसंक्षोभिणी
मुखास्सकलसिद्धयो विदितसंप्रदायाभिधाः ।।७१।।

{भावार्थ}

शुभाभरण भूषित भगवती त्रिपुरवासिनीके मन्दिरमें जो दशारक युगल है जिसमें सर्व सौभाग्यदायक चक्र है उसमें स्थित सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणि, सर्वाह्लादिनी, सर्वसम्मोहिनी, सर्वस्तंभिनी, सर्वजृम्भिणी, सर्ववशंकरी, सर्वरञ्जिनी, सर्वोन्मादिनी, सर्वार्थसाधिनी, सर्वसंपत्तिपूरिणी, सर्वमन्त्रमयी, सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी ये चौदह शक्तियाँ हैं, सम्प्रदाय योगिनियाँ नामसे जानी जाने वाली ये सकल सिद्धियाँ मेरा परम मंगल करें।

{पंचमावरण}

{सर्वार्थ साधक चक्रस्थित कुलोत्तीर्ण योगिनियों की वन्दना}

बहिर्दशारे सर्वार्थसाधिके त्रिपुराश्रयाः ।
कुलकौलाभिधाः पान्तु सर्वसिद्धिप्रदायिकाः ।।७२।।

{भावार्थ}

बहिर्दशार चक्रमें भगवती त्रिपुराके आश्रयमें सर्वार्थ साधकचक्रमें सर्वसिद्धिप्रदादेवी, सर्वसंपत्प्रदादेवी, सर्वप्रियंकारीदेवी, सर्वमंगलकारिणीदेवी, सर्वकामप्रदादेवी, सर्वदुःखविमोचिनीदेवी, सर्वमृत्युप्रशमिनीदेवी, सर्वविघ्ननिवारिणीदेवी, सर्वांगसुन्दरीदेवी, सर्वसौभाग्यदायिनीदेवी आदि कुलोत्तीर्ण योगिनियाँ जो सर्व सिद्धि प्रदायिका हैं, वे मेरी रक्षा करें ।

{षष्ठावरण}

{अन्तर्दशारमें स्थित सर्वरक्षाकर चक्रमें सर्वज्ञादि देवियोंका नमन}

अन्तःशोभिदशारकेऽतिललिते सर्वादिरक्षाकरे
मालिन्या त्रिपुराद्ययाविरचितावासे स्थितं नित्यशः ।
नानारत्नविभूषणं मणिगणभ्राजिष्णु दिव्याम्बरं
सर्वज्ञादिकशक्तिवृन्दमनिशं वन्दे निगर्भाभिधम् ।।७३।।

{भावार्थ}

अन्तर्दशारमें स्थित सर्वरक्षाकर चक्रमें त्रिपुरमालिनी आदिके निर्मित अति ललित महलमें जो नित्यशः स्थित हैं, नाना प्रकारके रत्नोंके आभूषणोंसे मणिगण खचित दिव्याम्बरोंसे शोभायमान हैं, वे सर्वज्ञादेवी, सर्वशक्तिदेवी, सर्वैश्वर्यप्रदादेवी, सर्वज्ञानमयीदेवी, सर्वव्याधिविनाशिनीदेवी, सर्वाधारस्वरूपादेवी, सर्वपापहरादेवी, सर्वानन्दमयीदेवी, सर्वरक्षास्वरूपिणीदेवी, सर्वेप्सितफलप्रदादेवी आदि शक्तिवृन्द जिन्हें निगर्भयोगिनी नामसे जाना जाता है – इन सबकी मैं दिवानिशि निरन्तर वन्दना करता हूँ ।

{सप्तावरण}

{सर्वरोगहरचक्रस्थित वशिनी वाग्देवता देवियोंकी वन्दना}

सर्वरोगहरेऽष्टारे त्रिपुरासिद्धयान्विते
रहस्ययोगिनीर्नित्यंवशिन्याद्या नमाम्यहम् ।।७४।।

{भावार्थ}

सर्वरोगहर अष्टार चक्रमें त्रिपुरासिद्धाके निकट रहनेवाली वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी, कौलिनी आदि रहस्य योगिनियोंकी मैं नित्य वन्दना करता हूँ ।

{आयुध वन्दना} {अष्टमावरण}

चूताशोकविकासिकेतकरजः प्रोद्भासिनीलाम्बुज–
प्रस्फूर्जन्नवमल्लिकासमुदितैः पुष्पैः शरन्निर्मितान् ।

रम्यं पुष्पशरासनं सुललितं पाशं तथा चांकुशं
वन्दे तावकमायुधं परशिवे चक्रान्तराले स्थितम् ।।७५।।

{भावार्थ}

आम्र, अशोक, विकसित केतकी, दैदीप्यमान नीलाम्बुज एवं विकसित नवमल्लिका पुष्पोंके निर्माण किये बाण, अति रमणीय धनुष, सुललित पाश तथा अंकुशादि जो चक्रके अन्तरालमें स्थित हैं, आपके आयुधोंकी हे परशिवे ! मैं वन्दना करता हूँ ।

{वनेश्वरी एवं भगमालिनी देवीकी वन्दना}

त्रिकोण उदितप्रभे जगति सर्वसिद्धिप्रदे
युते त्रिपुरयाम्बया स्थितवती च कामेश्वरी ।
तनोतु मम मंगलं सकलशर्म वज्रेश्वरी
करोतु भगमालिनी स्फुरतु मामके चेतसि ।।७६।।

{भावार्थ}

जिनकी प्रभा उदय होते सूर्यके समान है, ऐसे त्रिकोणमें जो संसारमें सर्वसिद्धिप्रद विख्यात है, जो भगवती त्रिपुराम्बा एवं कामेश्वरीके साथ संयुक्त रहती हैं, जो सकल आनन्दमयी हैं, वे वज्रेश्वरी एवं भगमालिनीदेवी मेरा परम मंगल करने वाली मेरे चित्तमें सदा उदित हों ।

{परापरातिरहस्य योगिनी वन्दना}

{नवमावरण}

सर्वानन्दमये समस्तजगतामाकांक्षिते वैन्दवे
भैरव्या त्रिपुराद्यया विरचितावासे स्थिता सुन्दरी ।
आनन्दोल्लसितेक्षणा मणिगणभ्राजिष्णु भूषाम्बरा
विस्फूर्जद्वदना परापररहः सा पातु मां योगिनी ।।७७।।

{भावार्थ}

सर्वानन्दमय चक्रमें जो स्थित हैं, सम्पूर्ण जगतमें जिनके लिये आकांक्षा {कामना}की जाती है, जो बिन्दुमें स्थित हैं एवं त्रिपुरभैरवी आदिके द्वारा आवासमें जो रहती हैं, जिनके नेत्र आनन्दसे उल्लसित रहते हैं, विजड़ित मणिगणोंकी शोभासे युक्त अम्बरकी जो भूषा धारण किये हैं, वे विस्फूर्जितवदना भगवती परापररहस्य योगिनी मेरी रक्षा करें ।

{चम्पक पुष्पार्पण} {केतकी–पुष्पार्पण}

उल्लसत्कनककान्तिभासुरं सौरभस्फुरणवासिताम्बरम् ।
दूरतः परिहृतं मधुव्रतैरर्पयामि तव देवि चम्पकम् ।।७८।।
वैरमुद्धतमपास्य शंभुना मस्तके विनिहितं कलाच्छलात्
गन्धलुब्धमधुपाश्रितं सदा केतकीकुसुममर्पयामि ते ।।७९।।

{भावार्थ}

उल्लसित कनककी कान्तिसे दीप्यमान अपनी सौरभ के विकाससे आकाशको सुवासित कर देने वाला दूरसे ही भ्रमरोंको निवारण करके, हे देवि ! मैं तुझे यह चम्पापुष्प अर्पण कर रहा हूँ ।

भगवान् शंकर से उग्र वैरको त्यागकर उनके मस्तकमें चन्द्रकलाके छलसे बढ़ जाने वाले, अपनी गन्धसे लुब्ध मधुपोंके आश्रयमें ही रहनेवाले केतकी कुसुमको, हे देवि ! मैं तुझे अर्पण कर रहा हूँ ।

{बकुलमाला समर्पण}

अगरुबहुलधूपाजस्रसौरभ्यरम्यां
मरकतमणिराजीराजिहारिस्रगाभां ।
दिशि विदिशि विसर्पद्गन्धलुब्धालिमालां
बकुलकुसुममालां कण्ठपीठेऽर्पयामि ।।८०।।

{भावार्थ}

हे माते ! जो अगुरु बहुल धूपकी अजस्र सुरभिसे अधिक रम्य गन्ध वाली है, मरकण मणियोंके समूह से भी जिस मालाकी आभा उत्कृष्ट है, जो देश–विदेशोंकी भ्रमर पंक्तियोंको अपनी गन्धसे आकृष्ट एवं लुब्ध कर रही हैं, ऐसी बकुल कुसुममाला आपके कंठपीठमें समर्पित करना चाहता हूँ ।

{धूप–दीप–नैवेद्य समर्पण}

धूपं तेऽगरुसंभवं भगवति ! प्रोल्लासिगन्धोद्धुरं
दीपं चैव निवेदयामि महसा हार्दान्धकारच्छिदम् ।
रत्नस्वर्णविनिर्मितेषु परितः पात्रेषु संस्थापितं
नैवेद्यं विनिवेदयामि परमानन्दात्मिके सुन्दरि ।।८१।।

{भावार्थ}

अगुरुसे निर्माणकी हुई धूप जिसकी गन्ध अत्यधिक तीव्र है और जो तुझे उल्लसित करने वाली है, साथ ही दीप जो हृदयगत अन्धकारका मूलोच्छेदन करने वाला है, मैं आपको समर्पित कर रहा हूँ । हे परमानन्दात्मिके

सुन्दरी ! मैं आपको स्वर्णनिर्मित एवं रत्नजड़ित चौड़े पात्रोंमें स्थापित करके नैवेद्य निवेदन करता हूँ ।

{नैवेद्य का वर्णन}

जातीकोरकतुल्यमोदनमिदं सौवर्णपात्रे स्थितं
शुद्धान्नं शुचि मुद्गमाषचणकोद्भूतास्तथा सूपकाः ।
प्राज्यं माहिषमाज्यमुत्तममिदं हैयंगवीनं पृथक्
पात्रेषु प्रतिपादितं परशिवे तत्सर्वमंगीकुरु ।। ८२।।

{भावार्थ}

मानो जाती पुष्पकी छोटी कलियाँ हों, इस प्रकार सुन्दर चावलोंको निर्माणकर सुवर्णके पात्र में रखे हैं एवं सूप {दाल} मूँग, मसूर, चनेकी निर्मित हैं, महिषीके घीमें सब पकाया गया है और पृथक्से नवनीतको भी पात्रोंमें प्रतिपादित किया है, हे परशिवे ! इस सबको अंगीकार करें ।

{शाकादिका वर्णन}

शिम्बीसूरणशाकबिम्बवृहतीकूष्माण्डकोशातकी
वृन्ताकानि पटोलकानि मृदुना संसाधितान्यग्निना ।
सम्पन्नानि च वेसवारविसरैर्दिव्यानि भक्त्याकृता–
न्यग्रे ते विनिवेदयामि गिरिजे सौवर्णपात्रव्रजे ।।८३।।

{भावार्थ}

सेमफली, जमीकन्द, पालक, बथुआदि, कुंदरू, अतिवृहत्, कूष्माण्ड {कद्दू}, कटहल, बैंगन, परवल इन सभी शालकोंको अग्निमें पकाकर, बेसवार आदि डालकर दिव्य भक्तिपूर्वक आपके आगे, हे गिरिजे ! अनेक स्वर्ण पात्रोंमें निवेदित किया जा रहा है ।

{अचारों का वर्णन}

निम्बूकार्द्रकचूतकन्दकदली कोशातकीकर्कटी
धात्रीबिल्वकरीरकैर्विरचितान्यानन्दचिद्विग्रहे ।
राजीभिः कटुतैलसैन्धवहरिद्राभिःस्थितान्पातये
सन्धानानि निवेदयामि गिरिजे भूरि प्रकाराणि ते ।।८४।।

{भावार्थ}

नींबू, अदरक, आम, कन्द, कदली, कटहल, ककड़ी, आँवला, बिल्व, करीर, कैर आदि के अनेक प्रकारके कड़ुवे तैल, नमक, हल्दी आदि डालकर

अचार निर्माण किये गये हैं, हे गिरिजे ! आनन्द चिद्विग्रहे ! इन्हें मैं आपको निवेदन कर रहा हूँ ।

{लड्डू–पूरी–पूवे का समर्पण}

सितयाञ्चितलड्डुकव्रजान्मृदुपूपान्मृदुलाश्च पूरिकाः ।
परमान्नमिदं च पार्वति ! प्रणयेन प्रतिपादयामि ते ॥८५॥

{भावार्थ}

शर्करासे पागकर लड्डू, मीठे पूए एवं कोमल पूड़ियाँ आदि हे पार्वति ! इस परम सुस्वादु अन्नको, मैं आपके लिये प्रतिपादित कर रहा हूँ ।

{दूध दधि–शिखरिणी अर्पण}

दुग्धमेतदनले सुसाधितं चन्द्रमण्डलनिभं तथा दधि ॥
फाणितं शिखरिणीं सितासितां सर्वमम्ब विनिवेदयामि ते ॥८६॥

{भावार्थ}

यह दूध अग्निमें गरम किया हुआ है, चन्द्र मण्डल की तरह सुन्दर दही भी तैयार है, इनको मिलाकर {फेंटकर} चीनी मिलाकर शिखरिणी तैयार है, मैं हे माँ ! यह सब तुझे निवेदन कर रहा हूँ ।

{अन्य शक्तियोंको नैवेद्यार्पण}

अग्रे ते विनिवेद्य सर्वममितं नैवेद्यमंगीकृतं
ज्ञात्वा तत्वचतुष्टयं प्रथमतो मन्ये सुतृप्तां ततः ।
देवी त्वां परिशिष्टमम्ब कनकामत्रेषु संस्थापितं
शक्तिभ्यः समुपाहरामि सकलं देवेशि शंभुप्रिये ॥८७॥

{भावार्थ}

यह सब नैवेद्य सम्पूर्ण रूपसे आपके आगे निवेदन करके जब आप इसे अंगीकार कर लेती हैं, उस समय आपके ही रूपमें आपके चतुष्टय तत्वको जानती हुई {गणाधिनाथ, बटुक, योगिनी, क्षेत्राधिनाथ} तथा प्रथमतः इन्हें सुतृप्त हुआ मानकर, हे देवी ! आपसे जो भी बचा हुआ प्रसाद है वह कनक पात्रों में संस्थापित कर, हे देवेशि ! शंभुप्रिये, माँ ! मैं सभी शक्तियोंको इसे सम्यक् प्रकारसे वितरित कर दूँगा ।

{भगवती अन्नपूर्णाकी वन्दना}

वामेन स्वर्णपात्रीमनुपमपरमान्नेन पूर्णा दधाना–
मन्येन स्वर्णदर्वीं निजजनहृदयाभीष्टदां धारयन्तीम् ।

सिन्दूरारक्तवस्त्रां विविधमणिलसद्भूषणां मेचकांगीम्
तिष्ठन्तीमग्रतस्ते मधुमदमुदितामन्नपूर्णां नमामि ॥८८॥

{भावार्थ}

वाम हस्तमें स्वर्णपात्र जिसमें पूर्णरूपसे अन्न भरा है, लिये हैं, दूसरे हाथमें परोसनेकी कलुछी धारण किये हैं, जिससे अपने भक्तजनों को अभीष्ट दान देती रहती हैं, जिनके सिन्दूरवर्णी रक्तवस्त्र हैं, विविध मणिजटित भूषण जो धारण किये हैं एवं श्यामवर्णकी हैं, वे मधुमदमुदिता अन्नपूर्णा माताके आगे बैठा हुआ, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ ।

{पार्षदों की पूजा}

पंक्त्योपविष्टान्परितस्तु चक्रे शक्त्यास्वयालिंगितवामभागान् ।
सर्वोपचारैः परिपूज्य भक्त्या तवाम्बिके पारिषदान्नमामि ॥८९॥

{भावार्थ}

श्री चक्रराजमें पंक्तिमें बैठी हुई अपनी शक्तियों से – जो आपके वाम भागमें आलिंगित रहती हैं–घिरी हुई हैं, आपको मैं सर्वोपचारसे पूजित कर, हे अम्बिके ! मैं आपकी पार्षदोंको प्रणाम करता हूँ ।

{ज्योति–स्वरूपा भगवती का नमन}

परमामृतमत्तसुन्दरीगणमध्यस्थितमर्कभासुरम् ।
परमामृतघूर्णितेक्षणं किमपि ज्योतिरुपास्महे परम् ॥९०॥

{भावार्थ}

परमामृत पानकर मत्त हुई सुन्दरी गणोंके मध्य सूर्यके समान तेजस्वी परम अमृतपानसे लाल घूमते हुए नेत्रोंवाली भगवती परम ज्योति स्वरूपाका मैं स्मरण करता हूँ ।

{भगवतीके दर्शनसे प्राप्त स्थिति}

दृश्यते तव मुखाम्बुजं शिवे श्रूयते स्फुटमनाहतध्वनिः ।
अर्चने तव गिरामगोचरे न प्रयाति विषयान्तरं मनः ॥९१॥
त्वन्मुखाम्बुजविलोकनोल्लसत्प्रेमनिश्चलविलोचनद्वयीम् ।
उन्मनीमुपगतां सभामिमां भावयमि परमेशि तावकीम् ॥९२॥
चक्षुः पश्यतु नेह किञ्चन परं घ्राणं न वा जिघ्रतु ।
श्रोत्रं हन्त श्रृणोतु न त्वगपि न स्पर्शं समालम्बताम् ।
जिह्वा वेत्तु न वा रसं मम परं युष्मत्स्वरूपामृते ।
नित्यानन्दविघूर्णमाननयने नित्यं मनो मज्जतु ॥९३॥
यस्त्वां पश्यति पार्वति प्रतिदिनं ध्यानेन तेजोमयीं ।
मन्ये सुन्दरि तत्वमेतदखिलं वेदेषु निष्ठां गतम् ।

यस्तस्मिन्समये तवार्चनविधावानन्दसान्द्राशयो ।
यातोऽहं तदभिन्नतां परशिवे सोऽयं प्रसादस्तव ।। ९४।।

{भावार्थ}

हे अनिर्वचनीया माँ ! तेरे मुख कमलके जबसे मुझे दर्शन हुए हैं एवं जबसे तेरी अत्यन्त गम्भीर अनाहत ध्वनि {शब्दावली} सुननेको मिली है, उसके उपरान्तसे तेरे अर्चनके अतिरिक्त मेरा मन विषयान्तरको सर्वथा प्राप्त होता ही नहीं है ।

तेरे मुखकमलको देखनेके फलस्वरूप उल्लसित हुए मेरे दोनों नेत्र प्रेममें निश्चल हो जाते हैं । यह सारी सभा ही आपके आगमन मात्रसे उन्मनी भावको प्राप्त हो जाती है, हे परमेशि ! ऐसी आपकी महिमाकी मैं भावना करता हूँ ।

आँखें कुछ भी नहीं देखें, त्वचा किसी भी अन्य स्पर्शका आश्रय नहीं ले, प्राणेन्द्रिय भी अन्य गन्धको न ग्रहण करे । हाय ! कान कुछ भी नहीं सुने, त्वचा किसीभी स्पर्शको नहीं ग्रहण करे । आपके स्वरूपामृतमें मत्त हुई मेरी वाणी मेरे–तेरेका कोईभी रस नहीं ग्रहण करे, मेरे नयन नित्य अखण्ड आनन्दमें विघूर्णित रहें एवं मेरा मन उसीमें नहाया रहे । हे माँ पार्वती ! जब मैं आपको ध्यानमें तेजोमयी रूपमें प्रतिदिन देखता हूँ तभी मेरी वेदोंमें वास्तविक निष्ठा उत्पन्न होती है एवं उनमें वर्णित इस अखिल तत्वको मैं मानने लगता हूँ, उस समय तुम्हारा अर्चन करते हुए जो मुझे घनीभूत आनन्द होता है, उससे, मैं हे पराशिवे ! तेरे प्रसाद {कृपा} से तुझसे पूर्ण अभिन्नताका अनुभव करता हूँ ।

{गणाधिनाथ, बटुक, योगिनी एवं क्षेत्राधिनाथ
रूपमें तत्त्व चतुष्टय की पूजा}

गणाधिनाथं बटुकञ्च योगिनी क्षेत्राधिनाथञ्च विविक्चतुष्टये ।
सर्वोपचारैः परिपूज्य भक्तितो निवेदयामो बलिमुक्तयुक्तिभिः ।।९५।।

{भावार्थ}

भगवान् गणाधिनाथ, बटुक, योगिनी एवं क्षेत्राधिनाथ रूपमें तत्व चतुष्टयको सर्वोपचारोंसे भक्तिपूर्वक परिपूजन करके मैं उक्त प्रकारकी बलि निवेदित करता हूँ ।

{आचमन समर्पण}

वीणामुपान्ते खलुवादयन्त्यै निवेद्य शेषं खलु शेषिकायै ।
सौवर्णभृंगारविनिर्गतेन जलेन शुद्धाचमनं विधेहि ।।९६।।

{भावार्थ}

हे माते ! कभी आपके सम्मुख वीणा वादन करते हुए फिर जो कुछ शेष नैवेद्य बचा है वह अन्य बचे हुए भक्तोंमें वितरित करती हुई, मैं आपके स्वर्ण निर्मित भोजन शालाके बाहर आने पर आपको शुद्ध जलसे आचमन निवेदित कर रही हूँ ।

{ताम्बूल–समर्पण एवं आरती निवेदन}

ताम्बूलं विनिवेदयामि विलसत्कर्पूरकस्तूरिका
जातीपूगलवंगचूर्णखदिरैर्भक्त्या समुल्लासितम् ।
स्फूर्जद्रत्नसमुद्गकप्रणिहितं सौवर्णपात्रे स्थितै–
र्दीपैरुज्ज्वलमन्नचूर्णरचितैरारार्त्तिकं गृह्यताम् ॥९७॥

{भावार्थ}

हे माँ ! मैं आपको कपूर, कस्तूरी, सुपारी, जाती, कत्था एवं चूना तथा लवंग चूर्ण डाला हुआ अति भक्ति सहित उल्लसित हुई ताम्बूल निवेदन कर रही हूँ । रत्नोंकी ज्योतिसे चमकते हुए स्वर्ण–पात्रमें उज्ज्वल अन्न चूर्णकी आरतीमें दीपक जलाकर मैं आपकी आरती करती हूँ, कृपया स्वीकार करें ।

{उल्लसित मुख दर्शन}

क्वचिद्गायति किन्नरी कलपदं वाद्यं दधानोर्वशी
रम्भा नृत्यति केलिमञ्जुलपदं मातः पुरस्तात्तव
कृत्यं प्रोज्झ्य सुरस्त्रियो मधुमदव्याघूर्णमानेक्षणं
नित्यानन्दसुधाम्बुधिं तव मुखं पश्यन्ति हृष्यन्ति च ॥९८॥
ताम्बूलोद्भासिवक्त्रैस्त्वदमलवदनालोकनोल्लासिनेत्रै–
श्चक्रस्थैः शक्तिसंघैः परिहृतविषयासंगमाकर्ण्यमानं ।
गीतज्ञाभिः प्रकामं मधुरसमधुरं वादितं किन्नरीभि–
र्वीणाझंकारनादं कलय परशिवानन्दसंधानहेतोः ॥९९॥

{भावार्थ}

कहीं तो किन्नरीगण सुन्दर गीतोंके मंजुलपद गायन कर रही हैं, उर्वशी वाद्य धारण किये है, रम्भा केलिके मन्जुल पदों पर, हे माँ तेरे सम्मुख नृत्य कर रही हैं, इन देवांगनाओंके इन कृत्योंको अपने सम्मुख करते देखती हुई, साथ ही मदपानसे घूर्णित नेत्रोंवाली आपके नित्यानन्द सुधासमुद्र मुखको देख–देखकर मैं प्रसन्न होती हूँ ।

आपका मुख ताम्बूल से लाल हो रहा है, ऐसे परम निराविल मुखको देखनेसे उल्लसित मेरे नेत्र हैं, श्रीचक्रस्थित अनेक शक्तियोंके संगमें आप

अनेक विषयों पर विचार कर रही हैं, उसे सुनती हुई मधुरस मधुर संगीत ज्ञानसे परितृप्त होती हुई, किन्नरियों द्वारा वीणाकी झंकार नादको सुनती हुई भी आपके भीतर जो परशिवानुभव स्वरूप आनन्द है, उसका हेतु अनुसंधानित नहीं हो पाता ।

{प्रदक्षिणोपरान्त पंचोपचार पूजन}

अर्चाविधौ ज्ञानलवोऽपि दूरे दूरे तदापादकवस्तुजातम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य ततोऽर्चनं ते पञ्चोपचारात्मकमर्पयामि ।।१००।।

{भावार्थ}

अर्चाविधिका मुझे तनिक भी ज्ञान नहीं है, अर्चनके उपयोगी पदार्थोंका भी मुझे दूरका भी अनुभव नहीं है, तब भी तेरे अर्चनके पश्चात् प्रदक्षिणा करके मैं पंचोपचारात्मक पूजा निवेदन कर रहा हूँ ।

{साष्टांग प्रणाम}

यथेप्सितमनोगतप्रकटितोपचारार्चितां
निजावरणदेवतागणवृतां सुरेशस्थिताम् ।
कृताञ्जलिपुटो मुहुः कलितभूमिरष्टांगकै
र्नमामि भगवत्यहं त्रिपुरसुन्दरि त्राहि माम् ।।१०१

{भावार्थ}

मैंने हे माँ त्रिपुरसुन्दरि ! तेरी आवरण देवगणोंसे युक्त इन्द्रादि देवोंके साथ यथा–मनोरथ मनमें उत्पन्न हुए भावजनित उपचारोंसे अर्चनाकी है, अब मैं कृताञ्जलि {हाथ जोड़े} पुनः भूमिमें साष्टांग निपतित हुआ, हे भगवति ! तेरी वन्दना कर रहा हूँ । माँ त्राहि माम्, त्राहि माम् ।

{प्रार्थना}

विज्ञप्तीरवधेहि मे सुमहता यत्नेन ते सन्निधिम् ।
प्राप्तं मामिह कान्दिशीकमधुना मातर्न दूरीकुरु ।
चित्तं त्वत्पदभावने व्यभिचरेद् दृग्वाक्चमे जातुचेत् ।
तत्सौम्ये स्वगुणैर्बधान न यथा भूयो विनिर्गच्छति ।।
क्वाऽहं मन्दमतिः क्वचेदमखिलैरेकान्तभक्तैःस्तुतं ।
ध्यातं देवि तथापि ते स्वमनसा श्रीपादुकापूजनम् ।।
कादाचित्कमदीयचिन्तनविधौ सन्तुष्टया शर्मदं ।
स्तोत्रं देवतया तया प्रकटितं मन्ये मदीयानने

नित्यार्चनमिदं चित्ते भाव्यमानं सदा मया
निबद्धं विविधैः पद्यैरनुगृह्णातु सुन्दरी ।।

{भावार्थ}

हे माता ! यह मेरी विज्ञप्ति आप विचारकर ध्यानसे सुनें, मैंने अति यत्नपूर्वक आपकी सन्निधिमें निवेदित की है । मधुके कन्दमें सिक्त हुएके समान तुझे प्राप्त को हे माँ ! अपनेसे दूर मत करो । यदि मेरा चित्त तेरी चरणचिन्तनासे व्यभिचारी हुआ दूर भागता है एवं मेरे नेत्र एवं वाणी तेरे विपरीत चलती है तो हे सौम्ये ! अपने गुणोंसे मुझे बाँधलो, जिससे मैं पुनः इधर–उधर नहीं हो सकूँ ।

कहाँ तो मैं मन्द–बुद्धि, कहाँ यह एकान्त भक्ति युक्त स्तुति और ध्यान, साथ ही मेरे मन द्वारा श्रीपादुका पूजन, ऐसा लगता है कि कदाचित् मेरी चिन्तन विधिसे संतुष्ट हुई, आपने मेरे स्तोत्रको आदर देनेके लिये मेरे शरीरमें अपने देवत्वको प्रकट कर दिया है ।

यह नित्यार्चन जो मेरे द्वारा चित्तमें सदा भावना किया गया है, इसे विविध पद्योंमें निबद्ध कर दिया गया है, हे सुन्दरी ! इसे गृहण करें ।

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्द भगवत् पूज्यपाद शिष्यस्य श्रीमच्छंकर भगवतः कृतौ श्रीत्रिपुरसुन्दरी–मानस–पूजा–स्तोत्रं समाप्तं।।

यह श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादके शिष्य श्रीमत् शंकर भगवत्पाद द्वारा विरचित श्रीत्रिपुरसुन्दरी–मानस–पूजा–स्तोत्र समाप्त है ।

अध्याय सात

(श्रीपुर–मणिद्वीप–वर्णन)

गोरखपुर पत्तनकी गीतावाटिकाके उपवनके पिछवाड़े पू. गुरुदेव बिल्ववृक्षके नीचे बैठे थे। सन् १९५१ ई. की सर्दियोंकी बात है। आधी धूप एवं आधी छायामें ही पू. गुरुदेव आसन लगाये थे। विल्ववृक्षके नीचेकी भूमि गोबरसे लीपी गयी थी। काली मोटी कम्बलें जो बिछानेके काम आती थीं, उन पर ही पू. गुरुदेवका आसन लगा था। मैं उस दिवस अवकाशमें था, अतः उनके पास जाकर बैठ गया था।

कुछ काल तो हम दोनों ही शान्त बैठे रहे, उसके पश्चात् पू. गुरुदेवने स्लेट पट्टीपर लिखकर मुझसे पूछा – "भैया ! कैसे आना हुआ ?" वे उनदिनों मौनव्रती थे।

उन दिनों मुझे भगवत्सेवाका जोश चढ़ा था। अपने हाथसे ही भोजन बनाकर भगवान्‌को भोग लगाकर तब भोजन पाता था। भगवान्‌की वल्लभ–सम्प्रदायानुसार सेवा–पद्धतिसे सूक्ष्म–सेवाका क्रम बना रक्खा था। मैं पू. गुरुदेवसे अपने मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको यह कहलवाना चाहता था कि वे मेरे भगवान्‌के लिये सिंहासननुमा एक काष्ठका छोटा मन्दिर बनवा दें, जिसमें सेवाके समय भगवान् गद्दा, तकिया लगाकर विराजित हो जावें और विश्रामके समय उसमें फाटक भी लग जाये। ऐसे निर्माणमें थोड़े अर्थ–व्ययकी संभावना थी, अतः मैं गुरुदेवसे ही अपने मामाजीको कहलवाना चाहता था। मेरी बात बहुत मनोयोगपूर्वक सुनकर पू. गुरुदेव शान्त हो गये। जब मैंने पुनः अपनी इच्छा निवेदन की और उससे होने वाली भगवत्सेवाजन्य सुविधाओंका वर्णन भी किया तो वे कहने लगे – "भैया ! मैं भी तेरी ही तरह अपनी इष्टदेवीकी सब पूजा–अर्चना करता हूँ, तेरे ठाकुरकी तरह मेरी माँ भी राजराजेश्वरी हैं, परन्तु मैं पोद्दार महाराजको (भाईजी श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दारको) कहाँ कहता हूँ कि मेरी राजराजेश्वरी इष्टदेवीके लिये मन्दिर अथवा स्वर्ण सिंहासन बनवा दें।

यद्यपि मेरे कहने पर वे निश्चय ही ऐसा कर देंगे, परन्तु मुझ सन्यासीके लिये क्या ऐसा कहना उचित होगा ? देख ! मैं तुझे मेरी पूजा–

पद्धति बता देता हूँ, तू भी मेरी पूजाकी पद्धतिका अनुकरण करता हुआ इसी प्रकार अपनी पूजा कर ।"

उन्होंने कहा – "देख ! ऐं" बीज वाग्भव कूट है – यह महासरस्वतीका स्वरूप है । सम्पूर्ण सृष्टिका उद्भव इसी एक परावाक्से होता है । ये ही सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञानकी महाशक्ति हैं । अपनी स्वच्छन्द विमर्श शक्तिसे ये ही इच्छाशक्ति एवं क्रियाशक्तिमें परिणत हो जाती हैं । इनकी इच्छाशक्ति का "श्रीं" बीज है और क्रियाशक्तिका "ह्रीं" बीज है । ये मन्त्रात्मक "ऐं", "ह्रीं" व "श्रीं" रूपा शक्तियाँ सम्पूर्ण विश्व प्रपंचका सृजन, परिपालन एवं विलय कर रही हैं । अब इन तीन सर्वसमर्था, सर्वकारणभूता, सर्वप्रपंचकी व्यवस्थापिका शक्तियों "ऐं", "ह्रीं" व "श्रीं" से तू जो भी माँगना हो, माँग ले । इस त्र्यक्षरी बीजके जप मात्रसे वे जो भी तेरी पारमार्थिक उन्नतिके लिये परमावश्यक होगा, अपने आप बिना किसीसे भी कहे–सुने तुझे प्रदान कर देंगी।" मैं मूक स्तब्ध उनकी वार्त्ता सुन रहा था और वे लिखकर कहते जा रहे थे – "देख! बचुआ !! जैसे ही मैं कहता हूँ – "ऐं", "ह्रीं" "श्रीं" अमृताम्भोनिधये नमः" – बस, यह कहते ही मेरे सम्मुख भगवती श्रीसुन्दरीके परम चिन्मय लोकका अमृत–समुद्र प्रकट हो जाता है । मैं इस चिन्मय परम कारण–कारण सृष्टिके परमाद्य बीज सुधा–सिन्धुकी स्तुति–पूजा वन्दना सभी करता हूँ । अब देख! ज्योंही मैंने उच्चारण किया – "ऐं", "ह्रीं" व "श्रीं" रत्न द्वीपाय नमः देख, मेरे सम्मुख परम दिव्य चिन्मय श्रीद्वीप प्रकट हो जाता है ।"

वे मुझे समझाने लगे – "भैया ! ऊपरसे देखनेवाला कोई भी प्राणी यह समझेगा कि यह बाबा ऐसे ही प्रमादमें समय व्यतीत करता है, भजन तो करता नहीं है, परन्तु मैं क्या भजन करूँ ? जो दिव्य श्रीलोक देवशिल्पी भगवान् विश्वकर्माके सम्मुख भी प्रकट नहीं हुआ – जो वृन्दावन, अयोध्या, मथुरा, काशी आदि सभी दिव्य सप्तपुरियोंके रचनाकर्त्ता हैं – वह लोक माँ मेरे सम्मुख मात्र इस त्र्यक्षरी प्रणवकी कृपासे मूर्त्तिमान प्रकट कर देती हैं ।" इस प्रकार वे मन्त्र बोलते जाते थे और भगवतीके अलौकिक चिन्मय राज्यमें प्रविष्ट हुए– से उसका प्रत्यक्ष वर्णन भी करते जा रहे थे । उनकी विलक्षण दशा यह थी कि वे सहज स्वाभाविक जाग्रत् दशामें थे, बिना देह ज्ञान लुप्त हुए मुझसे व्यवहार दशामें वार्त्ता भी कर रहे थे, साथ ही अप्राकृत राज्यका आँखों देखेकी तरह सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन भी करते जा रहे थे । यह उनकी विलक्षण योगस्थ स्थिति थी ।

उनका यह मन्दिर–प्रवेश प्रतिदिन ही होता था । वे अपने काष्ठके तखत पर आसीन रहते एवं भगवतीके चिन्मय मन्दिरके सभी अंग उनके सम्मुख व्यक्त होते रहते थे ।

यहाँ उनके द्वारा वर्णन किया गया सम्पूर्ण "श्रीपुर" धामका वर्णन दिया जा रहा है ।

(प्रथम मंत्र)

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अमृताम्भोनिधये नमः ।।१।।

(वर्णन)

भैया ! यह परमपद श्रीधाम कोई इदमित्थं देश (लोक) नहीं है, न ही यह कोई अमृत समुद्र, कोई प्राकृत समुद्र की तरह ही है । जब चित्तवृत्ति सम्पूर्ण लोक–लोकान्तरोंका अतिक्रमणकर उनके समग्र लौकिक भोगोंको तुच्छ काकविष्ठावत् मलिन हेय मानकर उनसे पूर्णतया विरत हो जाती है, तो जिस चिन्मय भूमिमें वह बिहरती है, वह भूमि साधककी उच्च भावनानुसार एक विलक्षण अप्राकृत धामके रूपमें परिणत होकर उसके सम्मुख प्रकट होती है । सगुण–साकारोपासक साधकका इष्ट क्योंकि अप्राकृत चिन्मय किन्तु परिछिन्न नाम–रूपात्मक होता है, अतः वह उस सिद्ध भूमिमें भी अपने इष्टके महल, वन, तड़ाग, नदी–पर्वत, झरने, वृक्ष–लताएँ, सूर्य–चन्द्र, पृथ्वी, जल सब कुछ लोकवत् ही देखता है । वह लोक जो साधकके सम्मुख उस चिन्मय अवस्थामें प्रकट होता है, वह यद्यपि साधककी इष्ट मूर्तिकी तरह ही सच्चिदानन्दमय होता है, वह लोक परमसत्य, एकमेव, अखण्ड, नित्य, भूमा ही होता है, परन्तु फिर भी भिन्न–भिन्न साधकोंकी रुचि, प्रकृति एवं अधिकारके कारण सभी महात्माओं द्वारा उसका वर्णन भिन्न–भिन्न रूपमें ही किया जाता है । परन्तु ये सभी भेद इतनी उच्च अभेद–भूमिमें परिलक्षित होते हैं कि वास्तवमें वे भेद रहते नहीं । एक अप्राकृत परिपूर्ण सच्चिदानन्द रस वहाँ असमोर्ध्व रूपमें सब भेदोंको अभेद बनाता वर्तमान रहता है ।

पू. गुरुदेव बता रहे थे कि उनकी भगवती त्रिपुरसुन्दरीका परमधाम मणिद्वीप भगवान् श्रीकृष्णके द्वारका धामकी तरह चतुर्दिक् समुद्रसे आवृत घिराहुआ है । यहाँ द्वारका लीला तो मृत्यु लोकमें आजके पाँच हजार वर्ष पूर्व अवतार रूपमें हुई थी, अतः यहाँ तो प्राकृत अथाह समुद्र उसे घेरे था, परन्तु इस मणिद्वीप को आवृत किये चिन्मय–सुधा–सिन्धु प्राकृत समुद्रवत् सर्वथा नहीं है । अमृत यहाँ जन्म–मृत्यु–हीन अवस्थाका परिचायक है यह सुधा–सिन्धु कोई पानीय द्रव्यसे भरा सर्वथा नहीं है परन्तु फिर भी प्राकृत

विश्वमें जितनी सुमिष्ट पानीय पदार्थकी कल्पना की जा सकती है, वे सभी इस अमृत समुद्रकी छायाकी छायाके अंशमात्र ही हैं । जैसे छायाको देखकर कोई उसके बिम्बकी कल्पना करना चाहे तो उसका उपहासास्पद मिथ्या प्रयास ही होगा, इसी प्रकार किसी प्राकृत समुद्रको देखकर कोई उससे इस मणिद्वीपको आवृत करने वाले (अमृत) सुधा–सिन्धुकी कल्पना करना चाहे तो वह उसका आकलन सर्वथा मिथ्या ही होगा । शब्द इस सुधासिन्धुका परिचय दे ही नहीं सकते ।

किसीको निर्विकल्प समाधिमें जैसे अपार चेतन समुद्रका अनुभव हो तो वह यही कहेगा – "अखण्ड, अपार, आनन्द सिन्धु" "असीम–आनन्द–सिन्धु", "घन–बोध–सिन्धु", परन्तु क्योंकि उस समयकी उसकी अनुभूतिमें वह आनन्दका उमड़ता–उफनता प्रवाह, इस प्राकृत समुद्रकी तरह सर्वथा नहीं है, इसी तरह अथर्वण महर्षि जब अमृत–सिन्धुका कथन करते हैं तो उनकी चिद्‌भूमिमें अवतरित यह सुधा–सिन्धु इस प्राकृत समुद्रकी तरह सर्वथा सर्वांशमें ही नहीं है । चिन्मयता अमृत ही है, परन्तु वह पानीय–जल पदार्थ नहीं है। इसी प्रकार इस अमृत समुद्रको समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये ।

पू. गुरुदेव बारबार इसी बात पर जोर दे रहे थे कि अचिंत्य भावोंको जैसे शब्द देना मूलवस्तुको विकृत करना ही है, उसी प्रकार तर्कोंको सर्वथा तिलांजलि देकर श्रद्धापूत चित्तसे कोई भगवतीकी आराधना करे तो उनकी कृपा–वारिकी कणिका मात्रके संबलसे वे हेतुरहित करुणामयी किसी परम भाग्यवान्‌के मानसमें सत्यको व्यक्त कर दें – तभी वह इस अमृत सुधा–सिन्धुका परिचय पाकर कृतार्थ हो सकता है । वाणी तो इतना ही कह सकती है कि इस द्वीपको घेरे अनन्तानन्त संख्या वाले सुधा–समुद्र सुमेरुके शिखरोंके समान आवर्त्त उत्पन्न करते, लहरा रहे हैं ।

(दूसरा मंत्र)

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रत्नद्वीपाय नमः ।।२।।

पू. गुरुदेव मुझे समझा रहे थे कि शास्त्रमें ऐसी भाषा है कि ब्रह्मलोकसे ऊपरके भागमें जो सर्वलोक सुना जाता है, वही मणिद्वीप श्रीपुर है । परन्तु यह ब्रह्मलोक भी कोई प्राकृत जगत् नहीं है । चित्तकी शुद्ध सत्वावस्थामें ही ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ एवं कैलाशादिका प्रकाश होता है । परन्तु जब चित्तभूमि विशुद्ध सत्वावस्थाका उल्लंघन कर जाती है और परमोच्च चिन्मय भूमिमें प्रवेश कर जाती है, तब यह श्रीसुन्दरी–लोक मणिद्वीप प्रकट होता है । इसीलिये इसके समान कोई सुन्दर धाम त्रिलोकीमें संभव ही नहीं है ।

पू. गुरुदेवका कथन था कि यही "श्रीधाम" अपनी सम्पूर्ण अलौकिताओंको लेकर श्रीकृष्णभक्त वैष्णवोंके लिये चिन्मय गोलोक वृन्दावन धामके रूपमें प्रकट होता है । लीलामहाशक्ति इस निर्मलतम चित्तभूमिकी भूतिको जहाँ मणिद्वीप श्रीधाम महाऐश्वर्यलोकके रूपमें व्यक्त करती है, वहीं यही चित्तभूमिकी भूति लीलामहाशक्तिके द्वारा परम रसमय साज–सज्जासे वृन्दावन धामके रूपमें सजी है । यद्यपि वृन्दावन धाममें भी ऐश्वर्य है, परन्तु वह रसकी सेवार्थ है, उसी प्रकार मणिद्वीप श्रीधाममें भी रस है परन्तु वह ऐश्वर्यकी सेवार्थ है ।

इस मणिद्वीपका दर्शन प्रयत्न–साध्य नहीं है, मात्र कृपा–साध्य है। श्रीत्रिपुरा रहस्य (माहात्म्य खण्ड) में वर्णन आता है कि जब भगवान् देवशिल्पी त्वष्टा (विश्वकर्मा) प्रयत्न करते–करते सर्वथा निराश हो गये और उनके ध्यान–पथमें यह लोक आया ही नहीं, तब वे श्रीब्रह्माजीसे बोले – प्रभो ! भगवतीके श्रीपुरका निर्माण सुमेरु पर्वतपर आपकी आज्ञानुसार मेरे द्वारा नहीं हो सकता । यह महालीला– धाम मेरे ध्यान पथमें ही नहीं आ रहा है ।

जबतक भगवती श्रीसुन्दरी अपनी हेतुरहित कृपासे मेरे चित्तपटल पर इसे प्रकाशित नहीं करेंगी, वह कार्य मेरे द्वारा होना असंभव है । भगवतीका धाम भगवतीका ही स्वरूप है, अतः उनकी कृपाके बिना उनकी मायाके आवरणको चीरना संभव नहीं है एवं जो वस्तु मेरी कल्पनामें ही नहीं आ रही, उसे प्राकृत अथवा दिव्य पटल पर उतारना मेरे द्वारा कैसे संभव है ?

यह सत्य ही था । देवशिल्पी तो बिचारे प्राकृत देवलोकके ही तो शिल्पी हैं । भगवतीकी अशेष शुभ विधायिनी कृपा–दृष्टि ही उनकी वृत्तियोंको जड़ताके आवरणसे मुक्तकर परमोच्च चिन्मय–भूमिमें प्रवेश करा सकती है । देवशिल्पी ध्यान करते हैं, परन्तु एक घोर अवरोधमय आवरण उन्हें घेर लेता है। इस सतहका भेदनकर ऊपर उठना अनुग्रह शक्तिके विशिष्ट प्रभावके बिना सर्वथा असंभव ही था । शास्त्रमें यह अवस्था रोधिनीनामसे प्रसिद्ध है । इस आवरणका भेदन करनेके पश्चात् ही साक्षात् चित्‌शक्तिका आविर्भाव होता है । इसी चित् शक्तिसे ही समस्त भुवन विधृत हो रहे हैं ।

देवशिल्पीको तो अभी बहुत स्तर लाँधने हैं । वे पहले विशुद्ध चित्‌शक्तिकी भूमिमें पहुँचें तब उनका त्रिकोणस्वरूपा व्यापिका बिन्दुमें प्रवेश हो, यह बिन्दु वह स्थान है जो त्रिकोणकी तीन रेखायें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश – तीन प्रकारके शिवांशोंकी किंवा इनकी ही वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री, इन तीन शक्तियोंकी प्रतिनिधि है । इसके पश्चात् सर्वकारणभूता समना शक्ति पर आरूढ़ परम शिवके दर्शन होते हैं जो सृजन, पालन, संहार अनुग्रह एवं

विग्रह पंच कृत्यकारी हैं । यहाँ मनोराज्यका अन्त हो जाता है । इसके आगे मन, काल, देशतत्व, देवता तथा कार्य–कारण भाव सब तिरोहित हो जाते हैं । तब निर्विकल्पक निवृति भावका उदय होता है । इसके उपरान्त भगवतीकी जिस पर कृपा होती है, उसके सम्मुख यह अप्राकृत जगत्का भी छत्रस्वरूप मणिद्वीप धाम प्रकाशित होता है । जितनी भी जहाँ–जहाँ सृष्टि है सभी इसीकी छत्रछायामें हैं । अतः असहाय देवशिल्पी अपनी पहुँच वहाँ न पाकर शान्त मौन हो गये थे ।

पू. गुरुदेव कह रहे थे कि देवशिल्पीके इस प्रकार निराश हो जाने पर श्रीब्रह्माजी भगवतीसे प्रार्थना करते हैं कि यदि वे देवशिल्पीको अधिकारी नहीं समझती हैं तो वे उनके स्वयंके अनाविल हृदयमें अपने परम चिन्मय लोकको प्रकाशित कर दें और सामर्थ्य दें कि वे उस अनन्तानन्त वैभवकी एक कणिकाकी झाँकीका भगवती सरस्वतीके सहयोगसे देवशिल्पीके सम्मुख बखान कर सकें और तदनुसार देवशिल्पीका निर्माण–कार्य संभव हो सके ।

पू. गुरुदेव कह रहे थे–मेरे सम्मुख तो भगवतीके त्र्यक्षरी प्रणवकी कृपासे वह परमाद्य विशुद्ध लोक प्रत्यक्षवत् व्यक्त हो रहा है ।

(३) ऐं ह्रीं श्रीं नानावृक्षमहोद्यानाय नमः
(४) ऐं ह्रीं श्रीं कल्पवाटिकायै नमः
(५) ऐं ह्रीं श्रीं सन्तानवृक्षवाटिकायै नमः
(६) ऐं ह्रीं श्रीं हरिचन्दन वाटिकायै नमः
(७) ऐं ह्रीं श्रीं मन्दार वाटिकायै नमः
(८) ऐं ह्रीं श्रीं पारिजात वाटिकायै नमः
(९) ऐं ह्रीं श्रीं कदम्ब वाटिकायै नमः
(१०) ऐं ह्रीं श्रीं पुष्पराग रत्न प्राकारायै नमः
(११) ऐं ह्रीं श्रीं पद्मराग रत्न प्राकारायै नमः
(१२) ऐं ह्रीं श्रीं गोमेधक रत्न प्राकारायै नमः
(१३) ऐं ह्रीं श्रीं वज्ररत्न प्राकारायै नमः
(१४) ऐं ह्रीं श्रीं वैदूर्यरत्न प्राकारायै नमः
(१५) ऐं ह्रीं श्रीं इन्द्रनीलरत्न प्राकारायै नमः
(१६) ऐं ह्रीं श्रीं मुक्तारत्न प्राकारायै नमः
(१७) ऐं ह्रीं श्रीं मरकतरत्न प्राकारायै नमः
(१८) ऐं ह्रीं श्रीं विद्रुमरत्न प्राकारायै नमः

पू. गुरुदेव कह रहे थे कि यह मणिपुर श्रीधाम अप्राकृत अनिर्वचनीय सृष्टि है । यह अघटना–घटना–पटीयसी योगमायाका पूर्ण स्वतन्त्र आत्मविलास है । भगवतीकी वृन्दावन–लीलाकी तरह कोई रसमयी लीला तो थी नहीं, उन्होंने तो भण्डासुरसे युद्ध किया था, अतः "श्रीपुर" का वर्णन शास्त्रोंने द्वारकाकी तरह एक किलेके रूपमें किया है । जैसे द्वारका चतुर्दिक् समुद्रसे घिरी थी, इसी प्रकार मणिपुर श्रीधाम भी चतुर्दिक् चिन्मय सुधा समुद्रसे घिरा है । श्रीब्रह्माजी एवं सभी ऋषियोंको इसके इसी प्रकार दर्शन मिले हैं ।

इन अनन्त सिन्धुओंके मध्य अपनी विशुद्ध चिज्जोतिसे सतत उद्भासित, समग्र तम एवं अज्ञानका मूलोच्छेदन करनेमें समर्थ अप्राकृत मणिद्वीप लोक अपनी महिमामें ही नित्य विराजित है । चतुर्दश भुवनोंमें जितना भी जो कुछ है – स्थल, जल अग्नि, वायु, आकाश, प्राण, मन, इन्द्रियाँ, अण्डज, उद्भिज, जरायुज एवं स्वेदज सृष्टि, वन, उपवन, नदियाँ, निर्झर, तालाब, वाटिकाएँ, पुष्प, फल, वनस्पतियाँ, वृक्ष, लताएँ, वाटिकाएँ, भवन, महल, स्वर्ण, रजत, सर्वधातुएँ, सर्व अनमोल रत्न, मुक्ता, माणिक्य, नीलम, पुखराज – सब कुछ इस ज्योतिर्मान द्वीपकी माया–दर्पणमें छाया मात्र है । यहाँ सब कुछ परम सत्य है । प्राकृत विश्वकी सम्पूर्ण रत्न–राशिका सौन्दर्य इस द्वीपकी रजकणके सौन्दर्यकी छायाकी छायाका परिणाम मात्र है ।

जैसे द्वीपमें वनस्पतियाँ होती ही हैं , इसी प्रकार इस द्वीपमें वृक्षोंसे चिन्मय कल्पलतायें कल्प–प्रसूनोंकी असीम शोभा लिये लिपटी हैं । ये सभी अतुलनीय हैं । इन्हें मात्र नाम ही कल्पवाटिका दिया गया है, वैसे इनकी फलदानमें, सौन्दर्यमें, स्वर्गस्थ नन्दनकाननके कल्पवृक्षोंसे तुलना हो ही नहीं सकती । जहाँ स्वर्गस्थ कल्पवृक्ष एक प्राकृत सत्व–प्रधान जड़ वृक्ष है, यहाँका सब सृजन सच्चिदानन्दमय है । कहाँ त्रिगुणात्मक स्वर्ग और कहाँ त्रिगुणातीत विशुद्ध भागवती लोक मणिद्वीप । इस चिन्मयधामका एक रजकण भी भगवतीके पूर्ण तत्वका प्रज्ञाता है, साक्षात् भगवतीका स्वरूप–विलास है एवं दुर्वासादि भगवतीके सर्व महासिद्ध भक्तोंका भी परम वन्द्य है । इन कल्पवृक्षावलियोंके एक पत्तेमें इतनी सामर्थ्य है कि भगवतीका साक्षात्कार करा सके। इन सभीकी अतुलनीय अचिन्त्य श्री है । एक ही वृक्षकी एक ही डालमें आम्र, नारिकेल, नारंग, बदरी, खर्जूर, कदली, दाड़िम सभी फल यहाँ पूर्ण सुमिष्ट उपलब्ध हैं । मालती, मल्लिका, कुन्द, केतकी, दूधी, माधवी सभी लताएँ सभी प्रकारके सौरभपूर्ण पुष्पोंसे लदी अपना सुवास चतुर्दिक् महका रही हैं । पू. गुरुदेव बारबार यही स्मरण दिलाते रहते थे कि यदि

कहीं किसी भी वनस्पतिकी सत्ता है तो उसकी स्थिति उद्भव एवं लय, इनकी छायाके कणसे ही है ।

यहाँ कल्पवृक्ष, सन्तानवृक्ष, हरिचन्दन, मन्दार, पारिजात एवं कदम्बकी असंख्य वाटिकाएँ हैं । ये सभी वाटिकाएँ मणिद्वीपके रत्नमय वालुकासे भरे समुद्र–तटकी शोभा सहस्रगुनी कर रही हैं । अमृतसमुद्रमें अति सुन्दर छोटी मछलियाँ भरी हैं, साथ ही बड़े–बड़े विशाल मत्स्य हैं। परन्तु ये सभी एक दूसरेके हिंसक सर्वथा नहीं है। यहाँ सभी भगवतीकी भक्त हैं और उनमें पूर्ण आनन्द भरा है । यहाँ समुद्रमें असंख्य रत्नमय शंख तैरते रहते हैं । तरंगोंसे सौम्य किन्तु उत्तुंग बड़ी–बड़ी लहरें चतुर्दिक् इन वाटिकाओं पर परम सुवासित अमृतजलके कण बिखेरती रहती हैं, इन जलकणोंसे ही ये सभी वाटिकाएँ सिंचित होती हैं ।

अनेक प्रकारकी रत्नमयी नौकाएँ विलक्षण ध्वजाओंसे युक्त इस सुधासागरकी शोभा बढ़ाती हैं । इन नौकाओंमें आरूढ़ भगवतीके पार्षद एवं भक्त इस अमृत समुद्रकी नित्य नूतन प्रतिपल अभिवर्धनशील शोभा निरखते रहते हैं ।

इस सम्पूर्ण द्वीपको एक पुष्पराग रत्नकी चारदीवारीसे घेरा गया है । इसके पश्चात् क्रमशः आठ और प्राकार हैं । ये प्राकार क्रमशः पद्मराग रत्न, गोमेद रत्न, वज्र रत्न (हीरा), वैदूर्य, इन्द्रनील, मुक्ता, मरकत एवं विद्रुमके रत्नोंके हैं । इन महान् परकोटों का भगवतीकी कृपाके बिना कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता । इनके चारों ओर अति दुर्लंघ्य खाई है । इन सभी परकोटोंके चार–चार विशाल द्वार हैं। इन परकोटोंमें अनेक प्रकार के अस्त्रों, शस्त्रोंसे युक्त, युद्ध–सम्बन्धी अनेक विद्याओंमें पारंगत असंख्य भगवतीके गण निवास करते है । यहाँ सर्वत्र आनन्दका ही साम्राज्य रहता है । भगवती जगदम्बाका दर्शन करने आनेवाले असंख्य देवगणोंके निवासके लिये यहाँ स्थान बने हैं । उनके वाहन एवं विमान यहाँ रहते हैं । विमानोंकी संचालन ध्वनिसे यहाँका कोना–कोना भरा रहता है । यहाँ स्थान–स्थान पर मीठे जलसे भरे असंख्य सरोवर हैं ।

पू. गुरुदेवका इस लोकका वर्णन करते समय बराबर यह जोर रहता था कि महान् ऐश्वर्यमय होते हुए भी यहाँकी शोभा सच्चिदानन्दमयी है । यहाँ मणि, मुक्ता, रत्न, साथ ही लोह, काँस्य, ताम्र, रजत, स्वर्ण, शीशा, पीतल आदि धातुएँ, जहाँ कठोरता अपेक्षित है, वज्रसे भी अधिक कठोर है, परन्तु माताके भक्तोंके लिये ये सभी परम सुकोमल परमानन्ददायक हैं किसी भी

वस्तुका कोई इत्थंभूत रूप नहीं है । इतना है, ऐसा है, ऐसा नहीं है, इस प्रकारकी विधि–निषेध जन्य वर्जना इस चिन्मय द्वीपके किसी भी पदार्थ एवं वस्तुमें नहीं है । ये सब सभी प्रकारसे स्वातंत्र्य युक्त स्वभावके हैं । यहाँकी प्रत्येक वस्तुका अणु–अणु अनन्त वात्सल्यमयी जगज्जनीकी स्वरूप परिणति ही है । ये सभी चाहे वृक्ष, वल्लरी, भूमि, गृह जो भी हों सभी कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्तुम् सामर्थ्य युक्त हैं । यहाँके कीट–पतंग, भृंग, पशु–पक्षी, इनके रूप, रंग, आकार, स्थिति, गुण, चेष्टा, भावकी इयत्ता नहीं है । ये सभी भगवती परमाद्या पराभट्टारिका भगवतीके भृकुटि–संकेत, उनके रुचि–संकल्प पर थिरकते हैं । भगवतीकी जैसी लीलाका जब जहाँ प्रकाश होता है, उसके लिये जो जैसा रूप–स्वभाव बनाना होता है, ये सभी स्वयं उसके अनुसार स्वतः ही ढ़ल जाते हैं । यथालीला जो भी कठोरता, उग्रता, दुर्धर्षता अथवा कोमलता, सरसता इनमें व्यक्त होनी चाहिये, सब स्वतः ही संघटित हो जाती है । वज्रसम कठोर, पदार्थोंमें भी भगवतीके भक्तोंके लिये अपार वात्सल्य यहाँ फूट पड़ता है और सुकोमलतम पुष्प पंखुडी भी यहाँ आवश्यकता पड़ने पर वज्रकी कठोर उग्रता भी ग्रहण कर लेती है । यह विलक्षण धाम अपना विस्तार एवं संकोच भी जहाँ जब जैसी आवश्यकता होती है, कर लेता है । जहाँ अभी कोई विस्तार चार लाख योजन है, वह आवश्यकता होने पर अनन्त कोटि योजन हो जाता है और पुनः सिकुड़कर चार योजन ही रह जाता है । जहाँ पुष्पराग मणिके प्राचीर हैं, वहाँ दुर्धर्ष लोह–सारके बन जाते हैं और जहाँ लोह–सारके दुर्ग हैं वे तत्क्षण ही कुसुमोंके कुञ्ज हो जाते हैं ।

यह सम्पूर्ण लोक ही एक क्षणमें अदर्शित हो जा सकता है और भगवतीका संकल्प हो तो कहीं भी व्यक्त हो जाता है । यह सर्व–भवन–समर्थ है । यह सम्पूर्ण लोक एक पुष्पमें भी परिणत हो सकता है और सारे ब्रह्माण्डोंको अपनेमें आवृत कर सकता है । जैसे भगवती त्रिपुराका स्वरूप अवाङ्मनस् अगोचर है, वैसे ही उनके धामका तत्व भी मन, बुद्धिसे परेका है। वैसे यदि सत्य कहा जाये तो अरूप ही इसका महामहिमामय रूप है और सर्वरूपता ही इसकी अरूपता है, साथ ही यह रूप, अरूप दोनोंसे ही पूर्णतया अतीत, निरपेक्ष, अनिर्वचनीय विलक्षण है ।

पू. गुरुदेव कहते थे कि इस मणिद्वीपमें प्रवृत्ति समूहका आत्यन्तिक उच्छेद होने पर ही प्रवेश प्राप्त होता है । जीव–कोटि ईश्वर–कोटिमें जब तक प्रविष्ट नहीं होता, मणिद्वीप तो दूर रहा, ब्रह्माण्डोंमें भटकना ही स्थगित नहीं होता । अतः जब परम सौभाग्यवान् कृपापात्र जीव सभी प्राकृत सृष्टिको

अतिक्रमणकर अमृत समुद्रको भी पार कर जाता है, तभी दिक् कालातीत चिन्मय भूमिमें प्रवेश पाता है।

पू. गुरुदेव कह रहे थे कि कल्पवृक्ष वाटिकाओंको घेरे काँसे एवं ताँबे के अरुणवर्णके प्राचीर हैं एवं इनके चारों ओर विशाल बावड़ियाँ हैं और सुन्दर द्वार–युक्त रत्नोंके महल हैं । इनमें वसन्त ऋतु अपनी मधु एवं माधवी शक्तियों सहित निवास करती है। कल्पवृक्ष–उद्यान एवं वाटिकाएँ हैं । इन अपने स्व–परिजनों सहित पराम्बिकाकी सेवा करता यहाँ वसन्त परम शोभा को प्राप्त करता है । सुन्दर बावड़ियोंमें विशाल पद्मिनी खिली रहती हैं । इनकी विशेषताएँ शास्त्रोंमें जैसा वर्णन है उससे अधिक ही हैं, उनसे न्यून सर्वथा नहीं है । शास्त्रोंमें लिखी बातोंको कभी अतिशयोक्ति नहीं माननी चाहिये । ऋषियोंने सत्य अनुभव करके सब लिखा है ।

(सन्तान–पारिजात वाटिकाएँ)

सन्तान वाटिकाओं एवं पारिजात वाटिकाओंके रूप एवं शोभामें थोड़ा ही अन्तर है । ये सन्तान वाटिकाएँ शीशेके प्राकारोंसे घिरी हैं । यहाँ ग्रीष्मऋतु अपनी शुक्र एवं शुचि (ज्येष्ठ तथा आषाढ़) नामक शक्तियों सहित रहती है । अमृतके समान मीठे रसोंसे भरे फलोंकी यहाँ प्रचुरता है । फलोंमें अति सुमिष्ट आम्र एवं जामुन बहुतायतसे होते हैं । संताप–तप्त प्राणियोंको यहाँ वृक्षोंकी छायामें बहुत ही सुख–शान्ति प्राप्त होती है । सिद्धों एवं देवताओंसे सन्तान वाटिकाका कोना–कोना भरा रहता है ।

(हरिचन्दनकी वाटिकाएँ)

पीतलके परकोटेसे आवृत हरिचन्दनकी वाटिकाएँ हैं । यह मलय चन्दनसे विकसित मलय पर्वत है । यहाँ वर्षा–ऋतु रत्नखचित स्वर्ण–महलोंमें रहती है । वर्षा ऋतुकी श्रावण एवं भाद्रपद (नभः श्री अथवा नभस्य श्री) नामक दो प्रमुख शक्तियाँ हैं । यहाँ मलय–चन्दन वृक्षोंकी शोभा दर्शनीय है। वर्षा ऋतुके नेत्र पिंगलवर्णी हैं और वह मेघरूपी कवचको धारण किये रहती है । धाराकी तरह बरसती वर्षाकी बूँदें इसके बाण हैं । अपने गणोंको लेकर जलधारा बरसाना इसका कार्य है । इसके अतिरिक्त वर्षा ऋतुकी दस और शक्तियाँ यहाँ निवास करती है । इन शक्तियोंके नाम क्रमशः निम्न हैं – स्वरस्या, रस्यमालिन, अम्बादुलां, निरत्नि, अभ्रमन्ती, मेघयन्तिका, वर्षयन्तती, चिबुणिका, वारिधारा एवं सम्मता । वापी, कूपादि बनवाकर जो लोग पुण्यलाभ करते हैं, वे देवीभक्त यहाँ आनन्दपूर्वक निवास करते हैं ।

(मन्दार वाटिका)

इसके पश्चात् पंच लोहमय परकोटेसे घिरी मन्दार वाटिका है । यह ताम्र, पीतल, रांगा, शीशा एवं लोहेके मिश्रणसे बना विचित्र परकोटा है । शरद ऋतु अपनी इव (आश्विन) एवं ऊर्ज (कार्तिक) इन दो शक्तियों सहित यहाँ विराजमान रहती हैं ।

(पारिजात वाटिका)

चाँदीके परकोटोंसे घिरी पारिजात वाटिका है, यहाँ हेमन्त ऋतु अपनी मार्गशीर्ष (सहश्री) एवं कार्त्तिक (सहस्यश्री) शक्तियों सहित सुशोभित है । देवी भागवतानुसार भगवतीके भक्त जो कृच्छ्र एवं चान्द्रायण आदि व्रत करते हैं, यहाँ निवास करते हैं ।

(कदम्ब वन–वाटिका)

चाँदीके परकोटेके पश्चात् सुवर्ण निर्मित प्राचीर है । इसके मध्य कदम्ब–वन हैं । कदम्बके फलोंसे रसमयी हाला टपकती रहती है, जिसकी सुगन्ध सर्वत्र व्याप्त रहती है । यहाँ भ्रमरोंका सुमधुर संगीत गुंजारित रहता है। आनन्दपूर्ण गीतोंके मधुर लास्यसे यह समृद्ध है । पक्षियोंका चाटुकारितापूर्ण कलरव यहाँ सर्वत्र होता रहता है । यहाँ सर्वमोहनकारिणि मंत्रिणी देवी निवास करती हैं । इनका नाम संगीतमातृका मातंगीदेवीके नामसे भी विख्यात है । इन देवीके पार्श्वमें शुकी, आद्या, श्यामला (काली चिड़िया), सारिकाएँ एवं हसन्तिका नामक स्त्री जातिकी पक्षी चहकती रहती हैं । ये पक्षी वीणा एवं वेणुकी हूबहू नकल कर लेती हैं । मातेश्वरी मंत्रिणीदेवी को श्यामला राजपूर्वा भी कहते हैं । लघुपूर्विका श्यामला जो इनकी ही कोटिकी मातेश्वरी हैं, यहाँ मन्द मधुर स्वरमें गायन करती रहती हैं । इन मंत्रिणीदेवीको आठों दिशाओंसे श्रीमातृका एवं उनकी प्रिय–पात्री देवियाँ घेरे रहती हैं। ये सभी समान कोटिकी देवियाँ हैं ।

शिशिर ऋतु एवं इसके आदरणीय देवता यहाँ निवास करते हैं । "तपश्री" एवं "तपस्यश्री" इन दो भार्याओं सहित ये परम प्रसन्न रहते हैं । जो गो एवं भूमिदान करते हैं उन भगवतीके उपासक सिद्ध पुरुषोंको यह लोक प्राप्त होता है ।

(पुष्पराग रत्नप्राकार)

इस पुष्पराग रत्नप्राकारके अन्दर भगवान् सिद्धेश अपने सिद्धों सहित भगवती परादेवीका ध्यान करते रहते हैं । यहाँकी भूमि एवं वन–उपवन सभी पुखराजकी शोभा वाले प्रतीत होते हैं । यहाँकी बालुका पुष्पराग रत्नमय है।

जिस रत्नका प्राचीर है, उसी रत्नके यहाँ वृक्ष, पृथ्वी, जल, मण्डप, खम्भे, सरोवर आदि हैं । यहाँ सभी वस्तुएँ पुष्पराग मणि निर्मित हैं । इन सभी परकोटोंकी शोभा, एक दूसरेसे लाखगुनी अधिक शोभामयी है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहने वाले इन्द्रादि दिक्पाल अपना–अपना समाज बनाकर हाथोंमें उत्तम आयुध लिये यहाँ निवास करते हैं ।

(पद्मराग मणि प्राकार)

पुष्पराग मणिके प्राकारके आगे कुंकुमके समान अरुण–विग्रहवाला पद्मरागमणिका एक परकोटा है । इसके मध्यकी भूमि भी इसी पद्मरागमणि के वर्णकी है । अग्नि शिखाके समान तेजोमयी ज्योति इससे झलमल–झलमल निकलती रहती है । यहाँ चारणगण अपनी पत्नियों सहित निवास करते हैं और बहुत सी भाषाओंमें भगवतीकी अनवरत स्तुति करते रहते हैं ।

कुछ शास्त्रोंमें ऐसा वर्णन आता है कि रत्नमय भूषणोंसे भूषित भगवतीकी कलाएँ चौसठ रूपोंमें यहाँ निवास करती हैं। इन कलाओंके नाम हैं – पिंगलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुंधरा, त्रिलोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी, सुरूपा, बहुरूपा, स्कन्दमाता, अच्युताप्रिया, विमला, अमला, अरुणी, आरुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति, संहृति, माता, संध्या, परमसाध्वी, हंसी, मर्दिका, वज्रिका, देवमाता, भगवती देवकी, कमलासना, त्रिमुखी, सप्तमुखी, सुरासुर विमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी, रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा, भुवनपाला, मदनातुरा, अनंग, अनंगमथना, अनंगमेखला, अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, सुरादिका, क्षयंकरी, शक्ति अक्षोभ्या, सत्यवादिनी, बहुरूपा, शुचिव्रता, वागीशी और उदारा ।

(गोमेद–रत्न प्राकार)

यहाँ संकर्षिणीदेवी अपने बटुकोंसे घिरी रहती हैं । इन बटुकोंके असंख्य भैरव नायक हैं । इनका ही नाम कराला भी है । ये काले मेघकी सी कान्तिवाली हैं एवं करवाल आयुध धारण किये हैं । ये आठ कोटि भैरवों, बतीस कोटि बटुकों एवं अष्ट सुभैरवोंकी स्वामिनी हैं । ये महाराज्ञी त्रिपुराका ध्यान करती विराजमान रहती हैं ।

(वज्ररत्न प्राकार)

इसके आगे हीरेका बना प्राकार है । इसके अनेक गोपुर एवं द्वार हैं। इसके मध्यकी भूमि वज्रमयी है । बड़े–बड़े महल, गलियाँ, चौराहे, राजमार्ग, वृक्ष, लतायें, पक्षी, सभी वज्रमणिकी आभा लिये यहाँ चमकते रहते हैं । यहाँ

भगवतीकी परिचारिकाएँ रहती हैं । एक–एक परिचारिकाकी सेवामें नाना सामग्रियों से युक्त लाखों दासियाँ रहती हैं। ये देवीकी दूतिका कहलाती हैं। ये नित्य अक्षुण्णयौवना हैं और अति सुन्दर वस्त्र पहनती हैं । इनके अंग विद्युत्के समान द्युतिमान हैं ।

ये सभी कलाओंमें कुशल हैं । इस वज्रमणि रचित चार–दीवारीकी आठों दिशाओंमें भाँति–भाँतिके वाहनोंसे सम्पन्न दूतियोंके निवास हैं ।

यहाँ वज्रा नदी हीरोंसे भरी बहती है । यह इस प्राकारकी परिकमा करती सुधा–समुद्रमें मिल जाती है । यहाँ वज्रश्वरीदेवी निवास करती हैं । ये वज्रमणिके भूषणोंसे भूषित हैं । इन्द्रप्रमुख वज्रधारी देवगणोंसे ये सुपूजित हैं । ये अपने उपासकों को वज्रस्थिति का दान करती हैं । इनके साधक साधनामें अडिग, अचल, स्थाणु एवं स्थिर रहते हैं । जब चित्त निष्काम हुआ निस्पन्द हो जाता है, तभी वज्रदान मानना चाहिये ।

(वैदूर्य रत्न प्राकार)

इसके पश्चात् वैदूर्य रत्नका प्राकार है । गोपुर एवं विशाल द्वारोंसे युक्त इसके ऊँचे शिखर हैं । यहाँ कद्रूके पुत्र नागगण पराम्बाके चरणकमलोंका ध्यान करते हैं । यहाँ ब्राह्मी आदि सप्त–मातृकाओंका भी निवास है । इनके नाम हैं ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा । ये सप्त मातृकाओंके नामसे विख्यात हैं । आठवीं मातृका महालक्ष्मी हैं । इनके आकार प्रकार ब्रह्मा, रूद्र, कुमार (भगवान कार्त्तिकेय) विष्णु, वाराह, इन्द्र और दुर्गाके समान हैं । इनके वाहन भी हंस, वृषभ, मयूर, गरूड़ादि हैं ।

(इन्द्रनीलमणि प्राकार)

श्रीदेवीभागवतानुसार इस इन्द्रनीलमणि प्राकारमें अनेक योजन विस्तृत कमल हैं । यह परम प्रकाशमान है, मानो सोलह अरोंवाला सुदर्शन चक्र ही हो। इन सोलह दलोंमें परम प्रकाशमान सोलह देवियाँ निवास करती हैं । इनके नाम हैं – कराली, विकराली, उमा, सरस्वती, श्री, दुर्गा, उषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति एवं आर्या ।

ये सोलहों शक्तियाँ नीले मेघके समान श्यामवर्णा हैं । ये भगवती जगदम्बा श्रीदेवीकी सेना नायिकाएँ हैं । सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी समग्र शक्तियोंकी ये स्वामिनी हैं । सहस्र मुखवाले शेष भगवान् भी इनके पराकमका बखान नहीं कर सकते ।

(मुक्तामणि प्राकार)

इसके पश्चात् मुक्ता मणियोंका प्राकार है । इसमें दसों दिशाओंके

दिक्पाल निवास करते हैं। यहाँ स्वर्णताल वृक्षोंका वन है। यहाँ के तालवृक्ष स्वर्णिम शोभा लिये हैं। इनमेंसे माध्वीक झरती रहती है। इस माध्वीककी महकसे सम्पूर्ण वन महक रहा है। यहाँ श्रीदण्डिनीदेवी (यमशक्ति) दण्ड विधान करती विराजित रहती हैं। इनके नेत्र तालमधुके सेवनसे सदा ऊन्मिषित रहते हैं। इनका मन आनन्द–सिन्धुकी ऊर्मियोंमें लहराता मस्त रहता है। ये सदा स्वप्न देखती रहती हैं स्वप्न यहाँ सूक्ष्मदशाका ही प्रतीक है। दण्ड– विधान मृत्युके उपरान्त सूक्ष्म शरीर पर ही होता है।

(मरकतमणि प्राकार)

यहाँ भगवती भुवनेश्वरीका षट्कोण वाला यंत्र है। इस यंत्रके पूर्व कोणमें चतुर्मुख ब्रह्माजी अपनी शक्ति गायत्रीके साथ निवास करते हैं। ये कमण्डलु, अक्षसूत्र, अभय मुद्रा, दण्ड एवं श्रेष्ठ आयुध धारण किये रहते हैं। भगवती गायत्रीके भी इनके समान ही आयुध है। वेद एवं सभी शास्त्र यहाँ मूर्त्तिमान विराजते हैं। सम्पूर्ण स्मृतियाँ और पुराण भी यहाँ जीवन्त स्थित हैं। इनके अतिरिक्त सम्पूर्ण व्याहृतियाँ भी यहाँ मूर्त्त रूपसे उपस्थित रहती हैं।

इस यंत्रके नैऋत्य कोणमें शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण करने वाली भगवती सावित्री निवास करती हैं। उनके साथ भगवान् विष्णु भी निवास करते हैं। मत्स्य, कूर्म आदि जो महा विष्णुके अवतार हैं वे सभी अपने–अपने निश्चित स्थानोंमें यहाँ निवास करते हैं।

वायव्य कोणमें भगवान् रुद्रका निवास है। वे फरसा, अक्षमाला, अभय एवं वर मुद्रा धारण किये निवास करते हैं। इनके साथ भगवती सरस्वती इसी वेषमें विराजती हैं। दक्षिणामूर्त्ति भेदसे जितने भी रुद्र हैं एवं गौरी आदि भेदसे जितनी पार्वती हैं – सभी यहाँ निवास करती हैं। चौसठ प्रकारके आगम शास्त्र एवं अन्य शास्त्र सभी मूर्त्तिमान होकर यहाँ निवास करते हैं।

अग्निकोणमें धनके स्वामी कुबेर अपने दोनों हाथोंसे रत्नमय कलश एवं मणि करण्ड लिये रहते हैं। ये अनेक प्रकारकी महालक्ष्मियोंसे संयुक्त हैं। अपने गणों सहित ये कुबेर भगवती जगदम्बाके कोषकी रक्षा करते हैं।

वरुण कोणमें (पश्चिम) रतिके साथ कामदेव विराजित हैं। ये अपने हाथमें पाश, अंकुश, धनुष एवं पंचबाण रखते हैं। श्रृंगार मूर्त्तिमान हुआ यहाँ निवास करता है।

ईशान कोणमें विघ्नों पर शासन करने वाले गणेशजी भगवती पुष्टिदेवीके

सहित निवास करते हैं श्रीगणेशजीकी जितनी भी विभूतियाँ हैं, सभी महान् ऐश्वर्योसे सम्पन्न यहाँ सुशोभित हैं । यहाँ जो ब्रह्मादि देवता हैं उनकी छायासे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके ब्रह्मा सत्ता पाते हैं । इसी प्रकार सभी देवताओंकी सत्ता समझनी चाहिये । इन सभीके द्वारा भगवती जगदीश्वरीकी सेवा होती रहती है।

(विद्रुम प्राकार)

इसके पश्चात् विद्रुमका प्राचीर है । इस प्रवालके प्राकारका विशुद्ध कुंकुम वर्ण है । इसके मध्य भागमें पंचभूतोंके आकाशाभिमानी, वायु अभिमानी, तेजाभिमानी, जल एवं धराके अभिमानी देवता निवास करते हैं । इनकी पाँच शक्तियाँ हैं – आकाश की गगना शक्ति है, वायुकी करालिका शक्ति है, तेजकी महोच्छुष्मा शक्ति है एवं जलकी रक्ता तथा पृथ्वीकी हृल्लेखा शक्ति है । ये सभी शक्तियाँ पाश, अंकुश, वर एवं अभय मुद्रा धारण करने वाली चतुर्भुजा हैं। ये आभूषणोंसे सदा अलंकृत रहती हैं । इनमें नूतन तारुण्यका गर्व भरा रहता है। वेषभूषामें ये भगवती जगदम्बाके समान हैं ।

श्रीमणिद्वीप धामको प्रकट करनेके पूज्य गुरुदेवके आगेके मन्त्र निम्न थे ––

(१९) ऐं ह्रीं श्रीं माणिक्य मण्डपाय नमः
(२०) ऐं ह्रीं श्रीं सहस्रस्तंभ मण्डपाय नमः
(२१) ऐं ह्रीं श्रीं अमृतवापिकायैः नमः
(२२) ऐं ह्रीं श्रीं आनन्द वापिकायै नमः
(२३) ऐं ह्रीं श्रीं विमर्श वापिकायै नमः
(२४) ऐं ह्रीं श्रीं बालातपोद्वाराय नमः
(२५) ऐं ह्रीं श्रीं चन्द्रिको द्वाराय नमः
(२६) ऐं ह्रीं श्रीं महा श्रृंगार परिधायै नमः
(२७) ऐं ह्रीं श्रीं महापद्माटव्यै नमः
(२८) ऐं ह्रीं श्रीं चिन्तामणि गृहराजाय नमः
(२९) ऐं ह्रीं श्रीं पूर्वाम्नाय मय पूर्व द्वाराय नमः
(३०) ऐं ह्रीं श्रीं दक्षिणाम्नाय मय दक्षिण द्वाराय नमः
(३१) ऐं ह्रीं श्रीं पश्चिमाम्नाय मय पश्चिम द्वाराय नमः
(३२) ऐं ह्रीं श्रीं उत्तराम्नायमय उत्तर द्वाराय नमः
(३३) ऐं ह्रीं श्रीं रत्नप्रदीप वलयाय नमः
(३४) ऐं ह्रीं श्रीं मणिमय सिंहासनाय नमः
(३५) ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्ममयैक मञ्चपादाय नमः

(३६) ऐं ह्रीं श्रीं विष्णुमयैक मञ्चपादाय नमः
(३७) ऐं ह्रीं श्रीं रुद्रमयैक मञ्चपादाय नमः
(३८) ऐं ह्रीं श्रीं ईश्वरमयैक मञ्चपादाय नमः
(३९) ऐं ह्रीं श्रीं सदाशिवमयैक मञ्चपादाय नमः
(४०) ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका तल्पाय नमः
(४१) ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका महोपधानाय नमः
(४२) ऐं ह्रीं श्रीं कौसुम्भास्तरणाय नमः
(४३) ऐं ह्रीं श्रीं महा वितानकाय नमः
(४४) ऐं ह्रीं श्रीं महा माया यवनिकायै नमः

(माणिक्य मण्डप)

विद्रुमके आकारके अन्तर्गत ही माणिक्य मंडप है । यह माणिक्य मंडपकी छत ऐसी ज्योतिर्मान है कि इनको देखकर ऊपर निकलने वाले भगवान् सूर्यदेवके घोड़े संध्याकाल हो गया, मानकर मध्याकाशमें ही अपनी गति धीमी कर देते हैं।

(सहस्रस्तंभ मण्डप)

श्रीदेवीभागवतानुसार विद्रुम प्राकारमें ही भगवतीके हजार–हजार स्तंभोंसे युक्त चार मण्डप हैं । पहला श्रृंगार मण्डप है, दूसरा मुक्ति मण्डप है, तीसरा ज्ञान मण्डप और चौथा एकान्त मण्डप है । इन मण्डपोंमें अनेक प्रकारके रत्नोंसे जड़ी चाँदनियाँ तनी हैं । भाँति–भाँतिके सुन्दर धूपसे ये मण्डप नित्य सुवासित रहते हैं । ये सुन्दर मण्डप कान्तिमें करोड़ों सूर्योके समान प्रकाशमान हैं । इन मण्डपोंके चतुर्दिक् केसर, मल्लिका एवं कुन्दकी वाटिकाएँ हैं । इन वाटिकाओंमें पुष्कल गन्धवाले, परिपूर्ण मदस्रावी असंख्य दिव्य भृंग विराजमान हैं । चारों मण्डपोंके सभी ओर महा पद्माटवी है ।

पहला श्रृंगार मण्डप है, उसके मध्य भागमें एक दिव्य सिंहासनपर देवी विराजमान हैं । वहाँ सभासदके रूपमें रहने वाले प्रधान देवता, देवांगनाएँ तथा अप्सराएँ विविध स्वरोंमें भगवती जगदम्बाके सामने गान करती हैं । दूसरा मुक्तिमण्डप है । इसके मध्यभागमें कल्याणमयी भगवती शिवा प्रत्येक ब्रह्माण्ड–निवासी भक्तोंको सदा मुक्ति प्रदान करती हैं । तीसरे मण्डपका नाम ज्ञान–मण्डप है । भगवती वहाँ विराजमान होकर ज्ञानका उपदेश करती हैं। एकान्त संज्ञक चौथे मण्डपमें भगवती जगदम्बा अनंगकुसुमा आदि सचिवा शक्तियोंके साथ बैठकर जगत्की रक्षाके विषयमें सदा परामर्श करती हैं ।

(अमृत वापिका)

श्रीत्रिपुरा रहस्य नामक ग्रन्थके माहात्म्य खण्डके अनुसार अरुणारुण वर्णका मनोमय शिखर है । सम्पूर्ण विश्व सृष्टिमें जहाँ कहीं भी मनकी सत्ता है इस मनोमय शिखरसे ही है । यहाँ इसके बीचोबीच खाईकी आकृतिकी एक अमृतसे भरी बावड़ी है । इसके तीन अंशमें जलमें पद्म प्रफुल्लित हैं और एक स्थानमें पृथ्वी है । यहाँ हंस कारण्डव, सारस और कोकपक्षी विराजित हैं । इस सुन्दर शोभायुक्त हृदमें नवरत्नोंसे विजड़ित नौकामें भगवती तारादेवी पद्मासनमें विराजित रहती हैं । ये भक्तोंको मोक्ष–प्रदायिनी हैं । इनकी नौकाके चतुर्दिक् असंख्य रत्नमयी नौकाएँ हैं । इन नौकाओंमें भगवती तारादेवीकी असंख्य शक्तियाँ सुविराजित रहती हैं । ये सभी शक्तियाँ तभी क्रियाशील होती हैं जब इन्हें जीवको तारनेकी दण्डिनी शक्ति द्वारा अनुमति प्राप्त हो जाती है । श्रीदण्डिनीशक्तिकी अनुमतिके बिना तो जीव इन तक पहुँच ही नहीं पाता ।

(आनन्द वापिका)

इस मनोमय शिखरके पश्चात् बुद्धिमय शिखर है । देव, दनुज, मानव, ऋषि, मुनि, सिद्ध कहीं भी किसी भी प्राणी में जो बुद्धिकी सत्ता है, सबका मूल उद्गम–स्थल स्रोत ये ही शिखर हैं । यह शिखर चन्द्र बिम्बके समान विशद शोभाशली है । यहाँ सम्पूर्ण मनोहारी दृश्यावलियोंसे सुशोभित आनन्दकी स्रोतस्विनी, ''आनन्दवापी'' है । यहाँ अमृतेशी देवी नौका स्थित निज स्वरूपभूता शक्तियोंसे घिरी रहती हैं । इस आनन्दवापिकामें आमोदसे परिपूर्ण सुरानन्दमयी देवी भी निवास करती हैं । अमृतेशानीदेवीकी कृपाके बिना दिव्य चिन्मयी ज्ञान–सुराका कोई भी पान नहीं कर सकता । अमृतेशानी देवी द्वारा अभिरक्षित इस आनन्दवापीको पार करना असंभव सा ही है ।

(विमर्श नाम्नी अन्तर्वापिका)

इसके आगे कृष्ण वर्ण वाला नील मेघके समान प्रकृष्ट शोभाशाली अहंकारमय प्राचीर है । विश्व–सृष्टिमें समस्त जीवोंमें जो ''अहंकार'' है, उसका उद्गम इसी प्राचीरसे है । इसके भीतर ज्ञान रूपी रससे निरन्तर भरी प्रवहमान अत्यन्त एवं शीतल विमर्श नाम्नी अन्तर्वापिका है। यहाँ इस विमर्श वापिकामें नौकामें स्थित माहेश्वरी कुरुकुल्लादेवी विराजित हैं । उनकी आज्ञाके बिना इस रसका कियदंश भी कोई नहीं पा सकता । इस विमर्श रूपी रसका लेश मात्र भी कोई पान कर ले तो उस व्यक्तिके समस्त अज्ञान–जन्य

ताप सदा–सदाके लिये मिट जाते हैं । वह कृपापात्र जगत्तत्वका रहस्य अनावृत देखता है ।

(बाला–तपोद्वार)

इसके पश्चात् सूर्यात्मक प्राचीर है । यहाँ कमलासन पर बारह रूपधारी मूर्त्तिमान मार्तण्ड भैरव अपने गण सूर्यो सहित विराजित हैं । इनके दुर्धर्ष प्रकाश–पुञ्जोंसे यह नित्य द्योतित है । ये अनन्त सूर्योके समान परम तेजस्वी मार्तण्ड भैरव भगवतीकी उपासना करते हुए यहाँ तप करते हैं ।

(चन्द्रिका द्वार)

यहाँ चन्द्रमाके आवरणमें ही एक श्रृंगार प्रासाद है, जो अनन्त अलौकिक विचित्रताओंको लिये है । यह प्रासाद कौस्तुभ मणियोंसे विजड़ित है । इसके मध्य मूर्त्तिमान श्रृंगार रससे परिपूर्ण एक खाई है । इसमें कौस्तुभ मणियोंसे जटित एक बड़ी नौकामें–जिसका नाम ही श्रृंगार है – भगवान् (कामदेव) कन्दर्प परम प्रेमपूर्वक भगवती रतिसे आलिंगित विराजमान हैं । ये दोनों रति–कन्दर्प भगवती त्रिपुराके अग्रगण्य भक्त हैं । ये अपने गणोंसे सेवित और सदा आनन्दित रहते हैं ।

(पद्माटवी)

इन सभी प्राचीरोंको घेरे हुए महासौरभसे पूर्ण महापद्मोंसे भरा पद्मवन है । इस पद्मवनमें जो कमल खिले हैं– उनके नाल, दण्ड, पत्र, केसर एवं कर्णिकाएँ अत्यंत ही दीर्घाकार हैं ।

(चिन्तामणि गृहराज)

इस पद्मवनमें भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरीदेवीका अत्यन्त प्रकाशमान उज्ज्वल प्रभायुक्त गृह है । यह चिन्तामणियोंसे निर्मित है । यह अलौकिक विचित्रताओंसे भरा है । इसके चार द्वार हैं । इन दरवाजोंके परम पुष्ट दिव्य आधार हैं। इस गृहकी आधार भगवतीकी कला अग्नि है जो यहाँ मूर्तिमती हैं । यह चिन्तामणि गृहराज गोलाकार है और यहाँ बारह कलाओंसे युक्त सूर्य रूप पात्र रखे हैं । यहाँ एक हजार योजन विस्तार वाला षोडश कलाओंसे युक्त चन्द्रमा है । इस चन्द्रमामें पूर्ण सुस्वादु अमृतासव भरा है । अति मनोहर सुगन्ध इसमें महक रही है । इन आसवामृत तरंगोंसे क्रीड़ा करता चन्द्रमा जलयानमें आसीन भगवतीके गुण–गान गाता है ।

मूल–प्रकृति भगवती श्रीसुन्दरीके इस शक्ति तत्व किंवा उनकी दस महाविद्याएँ सोपान रूपसे यहाँ उपस्थित हैं । इनसे युक्त भगवतीका परमोच्च मंच महान् शोभा पाता है ।

इसके चार द्वार हैं । पूर्व द्वारमें पूर्वाम्नाय संज्ञक आगम प्रसिद्ध देवताओंके भव्य भवन हैं ।

(पूर्वाम्नायमय पूर्वद्वार)

यहाँ समस्त देवगण मुक्ता–पत्र छायामें बैठे हैं एवं पद्मरागारुण वस्त्र धारण किये हैं, मुक्ताके आभरण धारण किये हैं, मालाएँ और चन्दनादि लेपन किये हैं–पाश, अंकुश, वर एवं अभयमुद्रा धारण किये हैं, रत्नमुकुट उनके सिर पर जगमगा रहे हैं और उस पर चन्द्रलेखा विराजित है ।

पूर्वाग्नायमय पूर्व द्वारमें गुरु, परमगुरु एवं परमेष्ठिगुरुका स्थान है । फिर महागणपति देवका निवास है । पूर्व द्वारमें कामगिरिपीठ ब्रह्मात्मशक्ति, पूर्णगिरिपीठ विष्णुरूप आत्मशक्ति एवं जालन्धरपीठमें रुद्रात्मशक्तिका निवास है ।

यहाँ शुद्ध विद्याम्बा, बाला भगवती, द्वादशार्धाम्बा, मातंगिनी देवी, हसन्ती श्यामला देवी अम्बा, श्रीशुक श्यामलाम्बा, श्रीसारिका श्यामलाम्बा, श्रीवीणा श्यालाम्बा, श्रीवेणु श्यामलाम्बा, श्रीलघु श्यामलाम्बा, गायत्र्यम्बा, क्षिप्र गणपति, सिद्ध गणपति, नवनीत गणपति, शक्ति गणपति, उच्छिष्ट गणपति, एकाक्षरी गणपति, भगवान् कार्तिकेय, सुब्रह्मण्य, स्कन्द, मृत्युञ्जय मनु, नीलकण्ठ मनु, त्र्यम्बक मनु, जातवेदो मनु, प्रत्यंगिरा मनु, ब्राह्मी प्रत्यंगिरा, नारायणी प्रत्यंगिरा, रौद्री प्रत्यंगिरा, उग्रकृत्या प्रत्यंगिरा, अथर्वण भद्रकाली प्रत्यंगिरा, सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, विद्येश्वरी उन्मोदिनी देव्यम्बा आदि देवता निवास करते हैं । इन सभी देवताओंके भव्य भवन चिन्तामणियोंसे ही बने हैं । यहाँ तड़ाग पोखरे सब चिन्तामणि निर्मित हैं । इन सबके करोड़ों मंत्र यहाँ मूर्त्त हुए निवास करते है।

(दक्षिणाम्नायमय दक्षिणद्वार)

यहाँ दक्षिणद्वार गुरुमण्डल, अष्टभैरव–(महामन्थान भैरव, खचक्र भैरव, फट्कार भैरव, एकात्मानन्द भैरव, रविभक्षण भैरव, चण्ड भैरव, नभोनिर्मल भैरव, डमर भास्कर भैरव) सिद्धौघ–(महादुर्मनाम्बा सिद्ध, सुन्दर्यम्बा सिद्ध, विश्वदलनाम्बा सिद्ध, कपालिकाम्बा सिद्ध, बड़वाम्बा सिद्ध, भीमाम्बा सिद्ध, कराल्यम्बा सिद्ध, खराननाम्बा सिद्ध, शालिनाम्बा सिद्ध) बटुक त्रय–(स्कन्द वटुक, चित्रवटुक विरञ्चिबटुक) पदयुग (प्रकाश एवं विमर्श) सौभाग्य विद्याम्बा, बगलामुखी देवी, वाराही मनु, वटुक मनु, तिरस्करिणी मनु, महामाया, अघोर मनु, शरभ मनु, भेताल मनु, खड्गरावण मनु, वीरभद्र मनु, रौद्रमनु, शास्तृ मनु, पाशुपतास्त्र मनु, ब्रह्मास्त्र मनु, वायव्यास्त्र मनु, भैरव (उग्र भैरव, अंग भैरव,

अघोर भैरव, भीम भैरव, विजय भैरव, रक्त भैरव, स्वर्णाकर्षण भैरव) दक्षिणामूर्ति (मेधा दक्षिणामूर्ति, लक्ष्मी दक्षिणामूर्त्ति, कीर्त्ति दक्षिणामूर्त्ति, ज्ञान दक्षिणामूर्त्ति, साम्ब दक्षिणामूर्त्ति, वीर दक्षिणामूर्त्ति, संहार दक्षिणामूर्त्ति, अपस्मारनिवर्तक दक्षिणामूर्त्ति, विष्णु, दक्षिणाम्नाय समय विद्येश्वरी भोगिनी देव्यम्बा, आदि देवता एवं इनके सभीके मंत्र मूर्त्तिमान हुए दक्षिण द्वारमें निवास करते हैं ।

(पश्चिमाम्नाय द्वार)

पश्चिमाम्नाय के निम्न अधिदेवता हैं– गुरुमण्डल (योनि–अम्बा–दूती, योनिसिद्धनाथाम्बादूती, महायोनि अम्बादूती, महायोनि सिद्ध नाथाम्बा दूती, दिव्ययोनि अम्बादूती, दिव्ययोनि सिद्धनाथाम्बा दूती, शंखयोनि अम्बादूती, शंखयोनि सिद्धनाथाम्बा दूती, पद्मयोनि अम्बादूती, पद्मयोनि सिद्धनाथाम्बा दूती) मण्डल (वह्निमंडल, सूर्यमण्डल, सोममण्डल) वीर द्वि अष्टक (सृष्टिवीरभैरव, स्थितिवीरभैरव, संहारवीरभैरव, रक्तवीरभैरव, यमवीरभैरव, मृत्युवीर भैरव, भद्रवीरभैरव, परमार्कवीरभैरव, मार्तण्डवीरभैरव, कालाग्निवीरभैरव) चौसठ सिद्ध– मंगलानाथ, चाण्डिकानाथ, ज्येष्ठानाथ, कन्तुकिनाथ, पटहानाथ, कूर्मानाथ, धनदा, गन्धा, गगना, मतंगा, चम्पका, कैवर्ता, मातंगगमना, सूर्यभक्षा, नभोभक्षा, स्रौतिका, रूपिका, दंष्ट्रा, धूम्राक्षा, ज्वाला, गान्धारा, गगनेश्वरा, माया, महामाया, नित्या, शान्ता विश्वा, कामा, उमा, श्रिया, सुभगा, विद्या, महाविद्या, अमृता, चन्द्रानाथ, अन्तरिक्षानाथ, सिद्धा, श्रद्धा, अनन्ता, शम्बरा, उल्का, त्रैलोक्या, भीमा, राक्षसी, मलिनानाथ, प्रचण्डानाथ, अनंगा, त्रिविधा, अनभिहिता, नन्दि, महामना, सुन्दरा, विश्वेश्वरा, काला, महाकाला, अभया, विकारा, महाविकारा, सर्वगा, सृगाला, पूतना, शर्वरी, व्योमा, पूर्णानाथ । लोपामुद्रामनु, भुवनेश्वरीमनु, अन्नपूर्णामनु, कामकलामनु, सुदर्शनमनु, गरुड़मनु, कार्त्तवीर्यमनु, नृसिंह मनु, नामत्रय मनु, (अच्युत, अनन्त एवं गोविन्द) राममनु, सीतामनु, गोपालमनु, सौरमनु, धन्वन्तरिमनु, इन्द्रजालिमनु, इन्द्र, अग्नि, यम, चित्रगुप्त, निऋति, वरुण, वायु, कुबेर, रुद्र मनु, इन्द्राक्षीमनु, दत्तात्रेय, वासुदेव, नारायण, रुद्र, विद्येश्वरी कुञ्चिकादेवी अम्बा–ये सभी देवगण अपने–अपने मंत्रों सहित पश्चिमाम्नाय रूप पश्चिम द्वार में स्थित हैं ।

(उत्तराम्नाय रूप उत्तर द्वार)

नवमुद्रा, (सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशंकरीमुद्रा, सर्वोन्मादिनी, सर्वमहांकुशा, सर्वखेचरी, सर्वबीज, सर्वयोनि) वीरावली पंचकमनु (ब्रह्म वीरावली, विष्णुवीरावली, रूद्रवीरावली, ईश्वरवीरावली, सदाशिववीरावली) तुरीयमनु, महार्घामनु, अश्वारूढ़मनु, विश्राम्बामनु, वाग्वादिनीमनु, दुर्गामनु (वन

दुर्गाम्बा, शूलिनी दुर्गाम्बा, जातवेदो दुर्गाम्बा, शान्तिदुर्गाम्बा, शबरि दुर्गाम्बा, ज्वल दुर्गाम्बा, लवण दुर्गाम्बा, दीप दुर्गाम्बा, असुर दुर्गाम्बा) कालीमनु, चण्डीमनु, नकुलीमनु, पुलिन्दिनीमनु, रेणुकामनु लक्ष्मीमनु, बागीशामनु, मातृकामनु, स्वयंवरामनु आदि देवता अपने मंत्रों सहित उत्तराम्नायमें विराजित हैं ।

यहाँ यह ध्यान करनेका विषय है कि पञ्च दशाक्षरी मंत्रोपासकोंके लिये मात्र चतुराम्नायपूजाका विधान है, किन्तु जो साधक परम्परासे षोड़शाक्षरीमंत्र–प्राप्त हैं, उन्हें षड़ाम्नाय पूजाका विधान है । पू. गुरुदेव षोड़शाक्षरी मंत्रोपासक थे, अतः उन्होंने षड़ाम्नाय देवताओंका भी वर्णन किया था, जो यहाँ दिया जा रहा है ।

(ऊर्ध्वाम्नाय रूप ऊर्ध्व द्वार)

अमृतार्णवमध्योद्यत्स्वर्णदीपे मनोरमे,
कल्पवृक्षावनान्तस्थे नवमाणिक्यमंडपे ।।
नवरत्नमय श्रीमत्सिंहासनगताम्बुजे,
त्रिकोणान्त समासीनं चन्द्रसूर्यायुतप्रभम् ।।
अर्धाम्बिकासमायुक्तं प्रविभक्त विभूषणं,
कोटिकन्दर्पलावण्यं सदा षोडशवार्षिकम् ।।
मन्दस्मित मुखाम्भोजं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरं,
दिव्याम्बर स्रगालेपं दिव्याभरणभूषितम् ।।
पानपात्रं च चिन्मुद्रां त्रिशुलं पुस्तकं करैः,
विद्यासंसदि बिभ्राणं सदानन्दमुखेक्षणं ।।
महाषोढोदिता शेष देवता गण सेवितं,
एवं चित्ताम्बुजे ध्यायेदर्धनारीश्वरं शिवम् ।।
पुरुषं वा स्मरेद्देवि स्त्री रूपं वा विचिन्तयेत्
अथवा निष्कलं ध्यायेत् सच्चिदानन्दलक्षणम् ।।
सर्वतेजोमयं ध्यायेत् सचराचरविग्रहम् ।।

भगवान् अमृतसमुद्रके मध्य परम मनोरम स्वर्णद्वीपमें विराजते हैं । कल्पवृक्षोंके वनमें नवमाणिक्य मंडपमें, नवरत्नमय श्रीमत्सिंहासनमें अम्बुजके ऊपर त्रिकोणान्तमें करोड़ों चन्द्र–सूर्यकी प्रभाको फीकी करने वाली तेजस्वितासे युक्त हैं । वे अपने आधे अंगमें भगवती पराम्बा माँको विराजित किये हैं, उनके आभूषण आधे–आधे अंगों के भिन्न–भिन्न हैं, वे कोटि कन्दर्पोके समान लावण्यशाली हैं एवं सदा सोलहवर्षके ही रहते हैं ।

वे दिव्य अम्बर (वस्त्र) धारण किये हैं एवं कुंकुम–केसरका घोल लेप किये हैं । उनके आभूषण भी परमदिव्य हैं । उनके आयुधरूपमें चारों हाथोंमें पान–पात्र, चिन्मुद्रा (ज्ञानमुद्रा), त्रिशूल एवं पुस्तक हैं । सम्पूर्ण विद्याओंकी सभामें वे सुशोभित हैं और सदानन्द उनके मुख एवं नेत्रोंमें छलक रहा है । वे महा षोढासे उत्पन्न अशेष देवतागणों द्वारा सेवित हैं । इस प्रकार अपने हृदयकमलमें अर्धनारीश्वर भगवान् शिवका ध्यान करना चाहिये । भगवान्को पुरुषमें एवं भगवतीको स्त्री रूपमें ही चिन्तन करें अथवा दोनोंको ही निष्कल, सच्चिदानन्द लक्षणोंसे युक्त सर्वतेजोमय चर–अचर सम्पूर्ण विश्वमूर्तिके रूपमें ध्यान करें ।

इस ऊर्ध्वाम्नायमें मालिनी गुरुमण्डल, मन्त्रराज पराषोडशी, पराभट्टारिका मनु, पराशांभवमनू, पराशांभवी देवी, प्रासाद पराम्बा, पराप्रासाद पराम्बा, दहरविद्याम्बा, हंसः महावाक्य, (प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म) पंचाक्षरी (ॐ नमः शिवाय), शक्ति पंचाक्षरी (ॐ ह्रीं नमः शिवाय) तारक मंत्र, (ॐ ह्रीं) अनुग्रहकर्त्ता सदाशिव (ईशानः सर्व विद्यानां ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपति ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोऽम् आदि देवता निवास करते हैं । इनके सभीके मूल मंत्र भी यहाँ निवास करते हैं ।

(अनुत्तराम्नाय)

इसके उपरान्त अनुत्तराम्नाय रूप अनुतर द्वार है । यहाँ महापादुका (श्रीविद्यानन्दनाथात्मक चर्यानन्दनाथ पादुका) सम्प्रदायपादुका (अमृतवर्षिणी पादुका परमेश्वरी), कादि विद्या गुरु परम्परा (परप्रकाशानन्दनाथ, परशिवानन्दनाथ, पराशक्त्याम्बा, कौलेश्वरानन्दनाथ, शुक्लदेव्यम्बा, कुलेश्वरानन्दनाथ, कामेश्वरी अम्बा, भोगानन्दनाथ, क्लिन्नानदनाथ, सहजानन्दनाथ, गगनानन्दनाथ, विश्वानन्दनाथ, विमलानन्दनाथ, मदनानन्दनाथ, भुवनानन्दनाथ, लीलाम्बा, स्वात्मानन्दनाथ, प्रियानन्दनाथ) कामराज चरण (महाप्रकाशपरिपूर्णानन्दनाथ पादुका, रक्तचरण श्रीपादुका, रक्तचरणाम्बा, शुक्लचरण, शुक्लचरणाम्बा, मिश्रचरण, मिश्र चरणाम्बा, निर्वाणचरण,, निर्वाणचरणाम्बा), पंचाम्बा (आदिनाथ, व्योमातीताम्बा, आदिनाथ, व्योमेश्वरी अम्बा, अनामयानन्दनाथ व्योमगाम्बा, अनन्तानन्दनाथ व्योमचारिणी अम्बा, चिदाभास व्योमस्थाम्बा) मूलविद्यायें, (ह्रीं मूलविद्याम्बा, प्रासाद परामूल विद्याम्बा, अतिरहस्य योगिनी मूल विद्याम्बा, शाम्भवी मूल विद्याम्बा, ह्ल्लेखामूल विद्याम्बा, समय विमला मुल विद्याम्बा, परबोधिनी मूल विद्याम्बा, कौल पञ्चाक्षरी मूल विद्याम्बा, चैतन्य मूल विद्याम्बा, शांभवानन्द नाथानुत्तरकौलिनी मूल विद्याम्बा,

गुरूत्तम विमर्शिनी मूल विद्याम्बा, अनामाख्य मूल विद्याम्बा, संकेतसार मूल विद्याम्बा, अनुत्तर वाग्वादिनी मूल विद्याम्बा), पञ्चदशाक्षरी, महाषोड़शी, पूर्तिविद्या, षड़ाधार विद्यामनु, प्रकाशचरण एवं विमर्श चरण, अनुत्तर शांकरी अम्बा, आदि देवगण एवं इनके मंत्र मूर्तिमान निवास करते हैं ।

ऐसा विलक्षण परम शक्तिसम्पन्न पू. गुरुदेवका मातृमन्दिर था, जो प्रतिदिन पूजा के समय उनके सम्मुख "ऐं ह्रीं श्रीं" त्र्यक्षरी प्रणव मन्त्रसे प्रकट होता था, उनकी पूजाकाल तक स्थित रहता था, एवं तब वह अपने साथ प्रकट हुए सभी सृष्टिकी देव–शक्तियों, मंत्रशक्तियों के सहित अपनी महिमामें विलीन हो जाता था ।

आम्नायों का वर्णन करने के पश्चात् पू. गुरुदेव मंत्र बोलने लगे–

१. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रत्न प्रदीप वलयाय नमः
२. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मणिमय सिंहासनाय नमः
३. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्ममयैक मञ्चपादाय नमः
४. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विष्णुमयैक मञ्चपादाय नमः
५. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रुद्रमयैक मञ्चपादाय नमः
६. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ईश्वरमयैक मञ्चपादाय नमः
७. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सदाशिवमयैक मञ्चपादाय नमः
८. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका तल्पाय नमः
९. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका महोपधानाय नमः
१०. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका कौसुम्भास्तरणाय नमः
११. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका महावितानकाय नमः
१२. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हंसतूलिका महामायायवनिकायै नमः

श्रृंगार मण्डपके मध्यभागमें एक परम दिव्य मणिमय सिंहासनमें भगवती विराजमान हैं । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं ईश्वर ये चारों देवता उस ब्रह्ममयैक मंच के चार पाये हैं । भगवान् सदाशिवको उस मञ्चका पटरा कहा जाता है । उस मञ्चके ऊपर महान् देवता परम आदरणीय भगवान् कामेश्वर विराजित हैं । सृष्टिके आदि में अपनी लीला करनेके लिये स्वयं भगवती ही दो रूपोंमें विराजित हुई । उस समय दाहिने भागमें भगवान् कामेश्वर एवं बायें भागमें शबल ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती कामेश्वरी प्रकट हुई । भगवतीके अर्धांग स्वरूप वे ही ये महान् ईश्वर हैं । कामदेवके मदका मर्दन करनेमें परम कुशल ये महेश्वर करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर हैं । सर्वोपरि उन महान् देवेश्वरकी आयु सदा सोलह वर्षकी ही रहती है । वे करोड़ों सूर्योंके समान

प्रकाशमान हैं । शीतल ऐसे हैं मानो करोड़ों चन्द्रमा । विशुद्ध स्फटिक मणिके समान दैदीप्यमान हैं । उनके श्रीविग्रहसे शीतल प्रकाश फैलता है । उनके वामांगमें भगवती विराजमान हैं ।

इस मणिमय सिंहासन पर भगवान् सदाशिवरूप पटरेपर हंस के सुकोमल सुन्दर पंखों का बिस्तर (तल्प) है, और 'अहं सः' यह ज्ञान ही वहाँ पर उप धान (तकिये हैं) । इसके ऊपर कुसुम्भी रंगका आस्तरण बिछा है । इस सिंहासन पर अनन्ततागुणयुक्त चन्दौवा, बितान तना है एवं महामायाकी यवनिका पड़ी हुई है । महामायारूप यवनिकाके हटनेके बिना भगवतीके दर्शन असंभव हैं ।

इसके पश्चात् पूज्य गुरुदेव भगवतीके श्रृंगारका वर्णन करने लगे । नवरत्नोंसे निर्मित करधनी भगवतीके कटिभागमें सुशोभित है । संतप्त सुवर्ण और वैदूर्य मणिसे सम्पन्न बाजूबन्द देवीकी भुजाओंको सुशोभित किये हैं । जिनकी आकृति श्रीचक्र जैसी है, ऐसे छतरीवाले कर्णफूल उनके कानोंमें विधृत हैं । इनकी दमकसे भगवती का मुखकमल दैदीप्यमान है । अर्धचन्द्रमा उनके मस्तक पर सुशोभित है परन्तु भगवतीके ललाटकी शोभा उसके स्वरूपको तुच्छ बनादेरही है । बिम्बफलको तिरस्कृत करनेवाले उनके लाल–लाल ओठ हैं और विशुद्ध ज्ञानकी ज्योति भगवतीकी दंत–पंक्तिसे छिटक रही है । कुंकुम एवं कस्तूरीका लेप उनके सर्वांगोमें है । इसीका तिलक भी वे अपने ललाट पर लगाये हैं । उनके परम सुन्दर त्रिनेत्र हैं । चन्द्रमा एवं सूर्यकी आकृति वाली दिव्य चूडामणि मस्तक पर धारण किये हैं । शुक्र नक्षत्रके समान परम स्वच्छ नासिका भूषण है, उनका कण्ठदेश, अनमोल मोतियोंकी लड़ियोंसे सुशोभित है । उनके मुखकमल पर अलकावली छायी है । चन्दन–पंक, कर्पूर, कुंकुम एवं कस्तूरीकी सममात्राके लेपको वे अपने वक्षोजों पर लेप किये हैं । उनकी ग्रीवा शंखकी आकृतिकी परम सुन्दर है ।

भगवतीके मुख पर छितराती उनकी अलकावलिसे ऐसी निर्मल सुगन्ध फैलरही है, जिससे भ्रमर चतुर्दिक् मँडराते गुञ्जार कर रहे हैं । मस्तक अमूल्य रत्नोंका मुकुट है । कलंककी कालिमासे रहित चन्द्रमाकी भाँति स्वच्छ उनका मुखमण्डल है । गंगाकी जल तरंगोंकी तरह सुन्दर नाभि है । मण्यिोंसे जटित मुद्रिका वे धारण किये हैं । कमलकी शोभाको हेय बनाने वाले तीन नेत्र हैं, जो उनकी मनोहरता को सहस्र गुणी कर रहे हैं । पद्मराग मणिके समान उनकी उज्वल कान्ति है । रत्ननिर्मित किंकिणी और

कंकणसे वे विचित्र शोभा शालिनी हो रही हैं । मणियों और मोतियोंकी मालाओंमें जो शोभा है वह सब शोभा उनके चरण–नखोंकी ज्योतिके सम्मुख तुच्छ है । उनकी कंचुकीमें असंख्य अनमोल रत्न प्रकाश फैला रहे हैं । धम्मिल मल्लिका पुष्पोंसे गुँथी है, और उसमें अनमोल रत्न समूह विजड़ित हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं और उनमें पाश, अंकुश, इक्षुधनु और पुष्पबाण सुशोभित हैं । उनका मधुर स्वर इतना सुमधुर है कि अनन्त वीणाओंसे निस्सृत राग उस मधुरताके सम्मुख तुच्छ हो जाते हैं । इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्तियोंको वे आत्मसात् किये हैं । लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, कीर्त्ति, क्रान्ति, क्षमा, दया, बुद्धि एवं मेधा–ये मूर्त्तिमती होकर भगवतीके चँवर डुलाती हैं । जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दौग्ध्री, अघोरा, अमंगला, ये नौ पीठ–शक्तियाँ भगवती पराम्बाकी सेवामें सदा तत्पर रहती हैं । शंखनिधि, एवं पद्मनिधि–ये निधियाँ भगवतीके पार्श्वमें विद्यमान हैं । नवरत्नवहा, काञ्चनस्रवा एवं सप्तधातुवहा, संज्ञक नदियाँ सुधासिन्धुमें मिल रही हैं । इन्ही भगवतीके संयोगसे भगवान् कामेश्वरको सर्वेश्वर होनेका सौभाग्य मिला है ।

अथ महायागक्रमः

{भावनोपनिषद् प्रयोगविधि समेत}

अधिकांशतः सन्यासी परिव्राजक श्रीविद्योपासक श्रीक्रमानुसार बाह्य क्रियात्मक पूजा सम्पादित करनेमें असमर्थ रहते हैं, वे न्यासपद्धतिसे महायागक्रमानुसार भावना पूजा किया करते हैं । पू. गुरुदेव भी अपने काष्ठमौन कालमें जब उन्होंने सम्पूर्ण क्रिया त्याग कर दी थी, भावनोपनिषद्‌के महायाग क्रमानुसार ही पूजा सम्पादित करते थे । पहले यह पूजा प्रतिदिन ही सम्पादित होती थी, तत्पश्चात् जब पू. गुरुदेव अपने भावराज्यमें सर्वथा ही डूब गये और उन्हें बाह्य संसारका होश ही नहीं रहता था, उस समय प्रति शुक्रवारके दिन वे यह महायाग क्रम पूजन सम्पादित कर लेते थे । पूज्य गुरुदेव श्रीराधाबाबा इस भावनोपनिषद्‌के तत्वमें पूर्ण सिद्ध स्वरूपमें प्रतिष्ठित थे और निरन्तर अखण्ड महात्रिपुरसुन्दरी भावमें ही रहते थे ।

यह बात साधकोंके सम्मुख और स्पष्ट कर देनी आवश्यक है कि पू. गुरुदेवकी विलक्षण अद्वैतसिद्ध दृष्टि थी । उनके लिये भगवती श्रीराधा ही सर्वांशतः भगवती त्रिपुरसुन्दरी थीं । गौड़ीय आचार्योने जैसे रुक्मिणीजीको चन्द्रावली एवं श्रीमती सत्यभामाजीको भगवती राधारूपमें मान्यता दी है, पू. गुरुदेवकी ठीक मान्यता थी– श्रीराधा ही ऐश्वर रूपमें भगवती आद्याशक्ति त्रिपुरसुन्दरी हैं । अतः उनके लिये "मैं राधा हूँ" यह कहना और "मैं ही महालक्ष्मी कमला" अथवा "मैं ही महात्रिपुरसुन्दरी हूँ" यह कहना कोई भेदमूलक उक्ति नहीं थी ।

मुझे तो अनेकों बार पू. गुरुदेवने यही कहा है – "अरे ! तू क्यों भगवतीकी उपासनाके लिये लालायित है, मेरा यह देह ही मणिद्वीपधाम अथवा श्रीचक्रराज है और मैं ही भगवती त्रिपुरसुन्दरी हूँ। कर ले मेरी आराधना ।" – वे यह कहते हुए अपने वाम चरण बढा देते थे । वे कहते – "मेरा वामचरण भगवती कामेश्वरी है और दक्षिण चरण भगवान् कामेश्वर है ।" कभी यदि भूलसे प्रमादवश मैं उनके एक ही चरणमें प्रणाम कर लेता, तो वे दूसरा चरण बढ़ाकर कहते – "मूर्ख ! इस चरणको प्रणाम नहीं किया ? अरे ! शिवस्वरूप मेरे इस चरणको प्रणाम कर ।"

वैसे तो प्रत्येक श्रीसुन्दरी विद्योपासक ऐसी ही भावना करता है, परन्तु साधकोंकी भावना मात्र वाचिक अथवा भावुक कल्पना भर होती है । एक भूखा प्राणी मात्र कल्पना करे कि मैं षट्रस भोजन कर रहा हूँ, इससे जैसे उसकी क्षुधा निवृत्त नहीं होती, ठीक इसी प्रकार मात्र शेखचिल्लीकी कहानीकी तरह उड़ान भरने वाले और सत्य वस्तुको प्राप्त किये प्राणीमें जितना अन्तर है, वैसी ही बात पू. गुरुदेवकी सिद्ध स्थिति तथा नये उपासककी भावनामें अन्तर मान लेना

चाहिये। पू. गुरुदेव जब "मैं ही आद्याशक्ति त्रिपुरा हूँ" – यह कहते थे तो वहाँ वे भगवतीके पूर्ण स्वातंत्र्यमूलक अनन्त विमर्श शक्तियोंका अपनेमें पूर्ण प्रकाश अनुभव करते थे । उनकी भावना मात्र थोथी काल्पनिक उडान नहीं थी। जब वे ऐसा बोलते थे, उनमें उस समय भगवती आद्याशक्तिकी सम्पूर्ण शक्तियाँ अनुगत होती थीं और वे सृष्टितंत्रका अनन्त मंगल करनेकी अपनेमें सामर्थ्य सँजोये रहते थे । उस काल में वे एक शरीरधारी कीडे नहीं होते थे । विष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्रादि ईश्वरोंके पूज्य पद पर प्रतिष्ठित बैठे होते थे ।

यहाँ यह बात सदा ध्यानमें रखनेकी है कि पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा पराम्बा भगवतीके साक्षात्कारप्राप्त पूर्ण सिद्ध महापुरुष थे ।

यह भावनोपनिषद् भगवती पराम्बाके पूर्ण कृपापात्र महर्षि अथर्वण पर भगवतीकी कृपासे प्रकाशित हुआ था । इसलिये इस उपनिषद् के महर्षि अथर्वण ही ऋषि हैं । श्रीदेव्यथर्वशीर्ष नाम श्रीदेव्युपनिषद्के भी ये ही अथर्वण महर्षि प्रणेता हैं । श्रीविद्योपासकोंकी दृष्टिमें भावनोपनिषद् इतना ही महत्वपूर्ण है, जितना श्रीदुर्गासप्तशतीके उपासकोंके लिये देव्यथर्वशीर्ष है ।

पू. गुरुदेव कादि विद्योपासक थे, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने जब साक्षात् प्रकट होकर उन्हें श्रीविद्योपासनाका आदेश दिया था, उस समय पू. गुरुदेवने भगवान् कामदेवको प्राप्त 'श्रीसौभाग्य अष्टोत्तर शत नामावली' से ही उपासना प्रारम्भकी थी । यह स्तोत्र भी श्रीपोद्दार महाराजने ही पू. गुरुदेवके पास भेजा था। पू. गुरुदेव तो चिन्तामग्न थे कि भगवान् श्रीकृष्णके आदेशानुसार वे इस उपासनाको कैसे प्रारंभ करें । उसी दिन श्रीपोद्दार महाराजने मद्राससे प्रकाशित एक पुस्तक उनके पास यह कहकर भेजी थी कि संभव है, यह पुस्तक उनके कोई कामकी हो । पू. गुरुदेवने ज्योंही पुस्तक खोली, उन्हें यह उपरोक्त स्तोत्र दृष्टिगोचर हुआ । पू. गुरुदेव इस स्तोत्रको पढ़ रहे थे, तभी पू. गुरुदेवकी हृदयस्थ श्रीकृष्ण मूर्त्ति मुसका उठी । पू. गुरुदेवने उनकी सम्मति मानकर सौभाग्य–अष्टोत्तरशत–नामावलि–स्तोत्रके हजारों पाठ किये थे । बादमें लगभग सात वर्ष तक पू. गुरुदेवने चतुःप्रहर भगवती श्रीललिताकी स्वरचित सहस्र नामावलिसे अर्चनाकी थी । पू. गुरुदेवकी स्वयं रचित सहस्रनामावलि पुस्तकाकार रूपमें गीता–वाटिकामें है । यह श्रीपोद्दार महाराजके घरमें उनके नित्य पूजित ठाकुरोंके साथ पूजित होती है । कहनेका इतना ही तात्पर्य है कि पू. गुरुदेव ऋषि थे और मंत्रार्चनमें अपने ही रचित मंत्र प्रयोग करते थे ।

कादि विद्याके श्रीभास्कर भट्ट प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं । श्रीअन्नपूर्णा मन्दिर, काशीमें उनके द्वारा प्रतिष्ठापित श्रीचक्रराज यंत्र हैं जो भगवान नर्मदेश्वरके शिरोदेशमें अंकित हैं । इस यंत्रको सच्चे साधक साक्षात् देवता तुल्य महत्व देते